ई-पत्रिका
₹ 49/-

▶ **भारत और नाटो** रक्षा सौदों की रस्साकशी

▶ **जल-संघर्ष:** भारत का जल संकट व वैश्विक जोखिम

CULT CURRENT

वर्ष: 8 अंक: 8 अगस्त, 2025

WE MAKE VIEWS

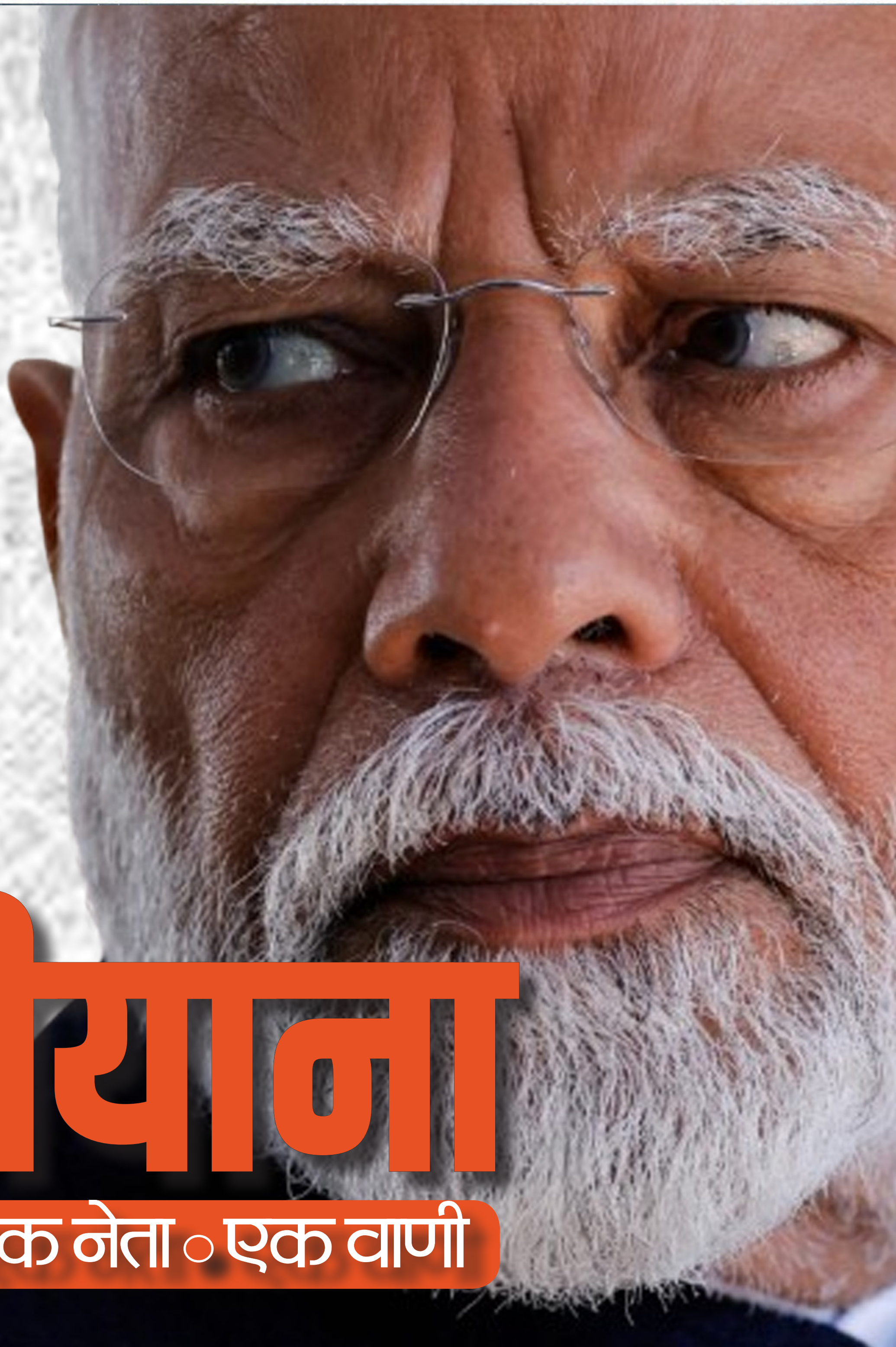

क्या हिंदुस्तान की सियासत में 'मोदी' एक अजेय शक्ति बन चुके हैं? क्या सत्ता एक व्यक्ति केंद्रित हो गई है? आज़ादी के अमृतकाल में 'चायवाला' से 'विश्वगुरु' तक का सफ़र तय करने वाले मोदी की राजनीति, क्या सिर्फ़ भावनाओं की सवारी है या इसके पीछे कोई ठोस विचारधारा भी है? आइये इन सवालों की पड़ताल करें...

मोदीयाना

○ एक देश ○ एक नेता ○ एक वाणी

Let's 360°
Media Consultancy
Web solution
Advertising
Publication
Languages Services
Survey & Research
Branding
AV Production
Campaign management
Event organizer
PR partner, PR associate
Content writer & provider
Media analyst
URJAS MEDIA VENTUE IS PERHAPS THE ONLY CONSULTING FIRM THAT CAN GIVE YOUR ORGANISATION A 360 DEGREE MEDIA BUSINESS GROWTH CONSULTING THROUGH IT'S 360 CAPABILITIES. FOR US, CONSULTING DOES NOT ONLY MEAN MECHANICAL COST REDUCTION THROUGH BETTER IT APPLICATIONS, WE FIND OUT WHAT YOUR ORGANISATION REALY NEEDS AND GIVE YOU AN INTELLECTUAL SOLUTION THAT HELP YOU REDUCE COST AS WELL AS HELPS YOURS BUSINESS GROW AND BEAT THE COMPETITION.
NOW!! OUR CONSULTANT WILL GET BACK TO YOU IN 24 HOURS AND PUT YOU IN TO THE HIGH GROWTH PATH
URJAS MEDIA
VENTURE
BEAT THE COMPETITION
www.urjasmedia.com
SMS 'BUSINESS GROWTH' TO +91-8826-24-5305 OR
E-MAIL info@urjasmedia.com

गुमनाम नायक

तकनीक से संवेदना तक की प्रेरक कहानी

हेमेश चडालावड़ा

हैदराबाद के एक किशोर वैज्ञानिक हेमेश चडालावड़ा, ने अपनी दादी की अल्ज़ाइमर से पीड़ा को नजदीक से देखा और उससे प्रेरित होकर 'अल्फा मॉनिटर' नामक एक स्मार्ट डिवाइस बना डाली। यह पहनने योग्य उपकरण बुजुर्गों के गिरने, भटकने या स्वास्थ्य गिरावट की जानकारी परिवार को तुरंत भेजता है। बाल पुरस्कार से सम्मानित हेमेश ने न सिर्फ तकनीक से जुड़ा नवाचार किया, बल्कि उसमें मानवीय संवेदना भी जोड़ी। Samsung और Intel जैसी संस्थाओं ने उनके काम को सराहा है। हेमेश उन युवाओं की मिसाल हैं जो समस्याओं से घबराते नहीं, बल्कि समाधान बनाते हैं। आज वे सिर्फ एक आविष्कारक नहीं, बल्कि भारत के प्रेरक भविष्य की झलक हैं – जहाँ संवेदना और विज्ञान साथ चलें। ●

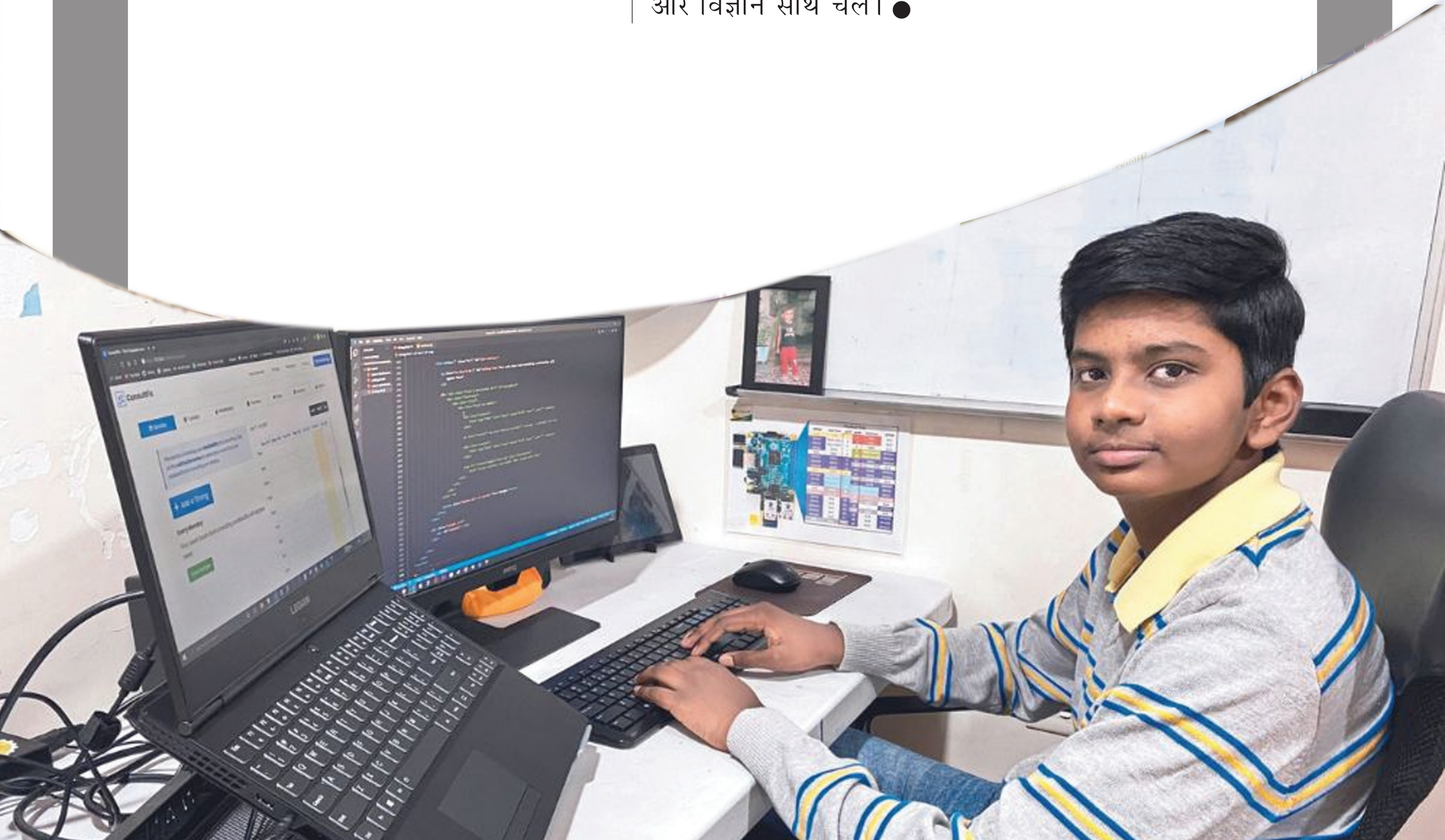

संपादकीय टोली

संपादकीय

राष्ट्रीय संपादक
संजय श्रीवास्तव

संपादक
श्रीराजेश

प्रबंध संपादक
सच्चिदानंद पाण्डेय

रोमिंग संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

राजनीतिक संपादक
अंशुमान त्रिपाठी

मेट्रो संपादक
शक्ति प्रकाश श्रीवास्तव
डॉ. रुद्र नारायण

अंतर्राष्ट्रीय संपादक
श्रीश पाठक

कारपोरेट संपादक
गगन बत्रा

खेल संपादक
जलज श्रीवास्तव

डिजीटल संपादक
सुनीता त्रिपाठी

सहायक संपादक
संदीप कुमार

उप संपादक
मनोज कुमार
संतु दास

साहित्य संपादक
अनवर हुसैन

कला संपादक
जया वर्मा

वेब एवं आईटी विशेषज्ञ
अनुज कुमार सिंह

फोटो संपादक
विवेक पाण्डेय

विशेष संवाददाता
कमलेश झा
विकास गुप्ता

संवाददाता
संदीप सिंह
अनिरुद्ध यादव

ब्यूरो प्रमुख (अंतर्राष्ट्रीय)
अकुल बत्रा (अमेरिका)
सी.शिवरतन (नीदरलैंड)
जी. वर्मा(लंदन)
डॉ. मो. फहीम अकबर (पाकिस्तान)
ए. असगरजादेह (ईरान)
डॉ. निक सेरी (मलेशिया)

ब्यूरो प्रमुख (राष्ट्रीय)
आर. रंजन (नई दिल्ली)
संजय कुमार सिंह (लखनऊ)
कैप्टन सुधीर सिन्हा (रांची)
निमेष शुक्ल (पटना)
नागेन्द्र सिंह (कोलकाता)
राकेश रंजन (गुवाहाटी)

विपणन
सत्यजीत चौधरी
महाप्रबंधक

ऑनलाइन प्रसार
सृजीत डे

वर्षः 8 अंकः 8 अगस्त, 2025

Follow us:
fb.com/cultcurrent @Cult_Current cultcurrent@gmail.com

URJAS MEDIA VENTURE
Head office: Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109, INDIA, Tel: +91 6289-26-2363
Corporate Office: 14601, Belaire Blvd, Houston, Texas 77083 USA Tel: +1 (832) 670-9074
Web: http://cultcurrent.in

Cult Current is a monthly e-magazine published by Urjas Media Ventures from Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109.
Editor: Srirajesh

Disclaimer: All editorial and non-editorial positions in the e-magazine are honorary. The publisher and editorial board are not obligated to agree with all the views expressed in the articles featured in this e-magazine. Cult Current upholds a commitment to supporting all religions, human rights, nationalist ideology, democracy, and moral values.

CONTENT

COVER STORY 26

मोदी मॉडल पड़ोसी दूर, सत्ता पास 34

मोदी युग के बाद की तैयारी 38

मोदी का नया भारत आलोचना के लिए... 40

अफ्रीका में भारत का दांव 20

भारत और नाटो रक्षा सौदों की रस्साकशी 22

क्या भारत बन सकता है वैश्विक व्यापार 44

जल-संघर्ष, भारत का जल संकट... 48

तेल का खेल और भारत की रणनीति 52

ताइवान पर तकरार ...आई दोस्ती में दरार 56

BMD का सवाल सुरक्षा या सर्वनाश 60

मध्यपूर्व की हकीकत 64

शंघाई से उभरती नई वैश्विक धुरी 68

पाक-भारत-चीन जलयुद्ध की ओर 74

12 युद्धोन्मादी ड्रैगन?

16 अमेरिका: एकाकी राह

सैयारा

Box Office Queen या सोशल मीडिया स्कैम?

76

Small talk

सोलंग वैली में सैंडल नहीं, स्क्रिप्ट उछली!

बॉलीवुड की उभरती अभिनेत्री रुचि गुज्जर इन दिनों ड्रामा क्वीन बनने की ओर हैं! उनकी फिल्म So Long Valley के प्रीमियर में हुआ बवाल अब कोर्ट तक जा पहुंचा है। निर्देशक और निर्माता मान सिंह ने उन पर 10 करोड़ का मानहानि केस ठोक दिया है! आरोप है कि रुचि ने फिल्म को फ्लॉप कराने की साज़िश रची— ' 20-30 लाख देकर करण चौहान नामक सहयोगी से स्टारकास्ट को हटवाने की कोशिश की और कोर्ट में रिलीज रोकने की याचिका डाली, जो खारिज हो गई। 25 जुलाई को प्रीमियर में उन्होंने सरेआम मान सिंह पर चप्पल और पानी की बोतल फेंकी, जिसके बाद FIR दर्ज हो गई। लगता है, सोलंग वैली अब असली क्राइम थ्रिलर बन गई है! ●

2025 में तहलका मचाने वाली खोजें

ठंड को समझने की कड़ी सुलझी

मिशिगन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने त्वचा में ठंडक महसूस करने की संपूर्ण तंत्रिका प्रणाली की पहचान की है, जो पहली बार इस प्रक्रिया को त्वचा से मस्तिष्क तक स्पष्ट रूप से दर्शाती है। यह शोध दर्शाता है कि शरीर में गर्मी और ठंड के लिए अलग-अलग जैविक तंत्र हैं-जो मनुष्य की तापमान के प्रति संवेदनशीलता और अनुकूलन की क्षमता को दर्शाते हैं। शोधकर्ता बो डुआन के अनुसार, यह खोज न केवल तंत्रिका विज्ञान में प्रगति है, बल्कि चिकित्सा में नई संभावनाएं भी खोल सकती है। ●

कैंसर पर वार करेगा पौधे का वायरस!

चने में पाया जाने वाला Cowpea Mosaic Virus अब कैंसर इम्यूनोथेरेपी में क्रांतिकारी साबित हो रहा है। यह वायरस मानव कोशिकाओं को संक्रमित नहीं करता, लेकिन प्रतिरक्षा प्रणाली को इतना सक्रिय करता है कि वह ट्यूमर को नष्ट कर देती है। शोध के अनुसार, CPMV से शरीर में दीर्घकालिक एंटी-ट्यूमर मेमोरी बनती है, जिससे फैलते कैंसर पर भी असर पड़ता है। यह खोज कैंसर इलाज की दिशा में एक नई उम्मीद बन गई है। ●

बायोलॉजिकल क्लॉक की टिक-टिक!

वैज्ञानिकों ने ऐसे सिंथेटिक सेल्स विकसित किए हैं जो सटीकता से समय बता सकते हैं—बिल्कुल जैविक घड़ी की तरह। इन कोशिकाओं में घड़ी नियंत्रित करने वाले प्रोटीन डाले गए, जो 24 घंटे की नियमित चमक दिखाते रहे। यह शोध दिखाता है कि कैसे जैविक क्लॉक अराजक आणविक परिवर्तनों के बावजूद भी लय बनाए रखती है। यह खोज नींद और चयापचय को बेहतर समझने और नियंत्रित करने में मददगार हो सकती है। ●

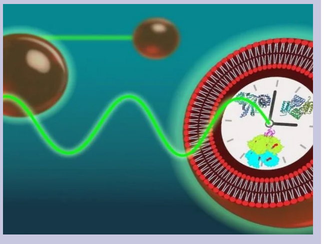

फफूंद से गेंहू हुआ और भी पौष्टिक!

हालिया शोध से पता चला है कि Rhizophagus irregularis नामक मिट्टी के फफूंद के साथ उगाया गया गेंहू न केवल बड़ा होता है, बल्कि उसमें जिंक और फॉस्फोरस जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व भी अधिक होते हैं। खास बात ये कि फॉस्फोरस बढ़ने के बावजूद उसमें फाइटेट नहीं बढ़ता—जो पोषक तत्वों को अवशोषित होने से रोकता है। इससे गेंहू और अधिक bioavailable यानी शरीर के लिए उपयोगी बनता है। यह जैविक तरीका गेहूं को रासायनिक या जीएम संशोधन के बिना ही पोषणवर्धित बना सकता है। ●

किआ कैरेन्स क्लाविस ईवी भारत में लॉन्च

किआ इंडिया ने 15 जुलाई को अपनी नई इलेक्ट्रिक एमपीवी Carens Clavis EV लॉन्च की, जिसकी शुरुआती कीमत 17.99 लाख (एक्स-शोरूम) रखी गई है। यह वाहन मास-मार्केट के लिए डिजाइन किया गया है और किफायती इलेक्ट्रिक विकल्प के रूप में पेश किया गया है। इसका उद्देश्य मिड-सेगमेंट ग्राहकों को आधुनिक सुविधाओं और बेहतर रेंज के साथ ईवी अनुभव देना है। ●

नियुक्ति

पराग जैन, सचिव, R&AW

1 जुलाई 2025 को पराग जैन को भारत की खुफिया एजेंसी रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (R&AW) का नया सचिव नियुक्त किया गया। उन्होंने इस पद पर समीर भाटिया का स्थान लिया है। देश की बाह्य खुफिया एजेंसी की कमान संभालने वाले जैन, सुरक्षा और रणनीतिक मामलों में व्यापक अनुभव रखते हैं।

इस्तीफा

संजय नांबियार, समूह महापरामर्शदाता, यस बैंक

संजय नांबियार ने निजी क्षेत्र के प्रमुख बैंक 'यस बैंक' में समूह महापरामर्शदाता के पद से इस्तीफा दे दिया। वे लंबे समय से बैंक के कानूनी मामलों की देखरेख कर रहे थे। उनके इस्तीफे का समय बैंक के ऊपर चल रही कुछ वित्तीय और नियामकीय जांचों के बीच आया है।

उन्होंने कहा

उर्सुला वॉन डेर लेयेन
यूरोपीय संघ प्रमुख

"यूरोपीय संघ-अमेरिका व्यापार समझौता वर्तमान समयों में सुनिश्चितता प्रदान करता है। यह 15% मूल टैरिफ की व्यवस्था स्थापित करता है।"

शी जिनपिंग
राष्ट्रपति, चीन

"चीन-EU संबंध इतिहास के एक संवेदनशील मोड़ पर है। कोई मौलिक हितों का टकराव नहीं है— हमें अपने सहयोग को खुलापन और समझौते की दिशा में बढ़ाना चाहिए।"

श्रद्धांजलि

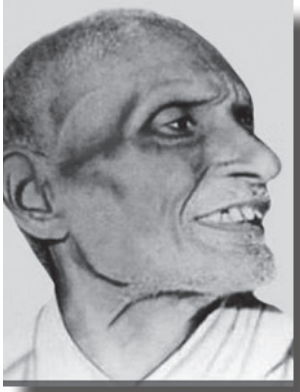

पिंगली वेंकैया
(02/08/1876-04/07/1963)

पिंगली वेंकैय्या भारत के स्वतंत्रता संग्राम के एक ऐसे सच्चे सिपाही थे, जिनका नाम भारतीय राष्ट्रीय ध्वज के साथ अमर हो गया। उनका जन्म 2 अगस्त 1876 को आंध्र प्रदेश के मछलीपट्टनम (तत्कालीन मद्रास प्रेसीडेंसी) में हुआ था। वे एक बहुभाषाविद्, शिक्षक, भूवैज्ञानिक, किसान, और ब्रिटिश सेना के पूर्व अधिकारी थे।

वेंकैय्या का झुकाव देशभक्ति की ओर युवावस्था से ही था। ब्रिटिश सेना में सेवा के दौरान उन्होंने अफ्रीका में महात्मा गांधी से भेंट की, जो आगे चलकर उनके जीवन का महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। भारत लौटने के बाद उन्होंने राष्ट्रीय पहचान के प्रतीक के रूप में एक ऐसे ध्वज की आवश्यकता महसूस की, जो देशवासियों को एक सूत्र में बाँध सके।

1916 में उन्होंने 'भारत के राष्ट्रीय ध्वज' पर एक शोधपत्र प्रस्तुत किया, जिसमें 30 से अधिक ध्वज डिज़ाइन थे। उन्होंने वर्षों तक देशभर में ध्वज के महत्व को समझाने का कार्य किया। 1921 में विजयवाड़ा में कांग्रेस अधिवेशन के दौरान उन्होंने महात्मा गांधी के सामने एक झंडे की डिज़ाइन रखी, जिसमें दो रंग – लाल और हरा, और एक चरखा था। गांधीजी ने बाद में इसमें सफेद रंग और अशोक चक्र को जोड़ा। यह डिज़ाइन ही आगे चलकर भारत के तिरंगे का आधार बना।

पिंगली वेंकैय्या का योगदान ऐतिहासिक रहा, परंतु उन्हें अपेक्षित सम्मान नहीं मिल सका। 4 जुलाई 1963 को उन्होंने गुमनामी और निर्धनता में अंतिम सांस ली। स्वतंत्र भारत के लिए यह विडंबना रही कि जिसने तिरंगा दिया, उसे समय पर न पहचान सका।

आज जब हम तिरंगे को गर्व से फहराते हैं, तो हमें पिंगली वेंकैय्या को नमन करना चाहिए, जिनकी कल्पना, श्रम और समर्पण ने इसे जन्म दिया और राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक बनाया। ●

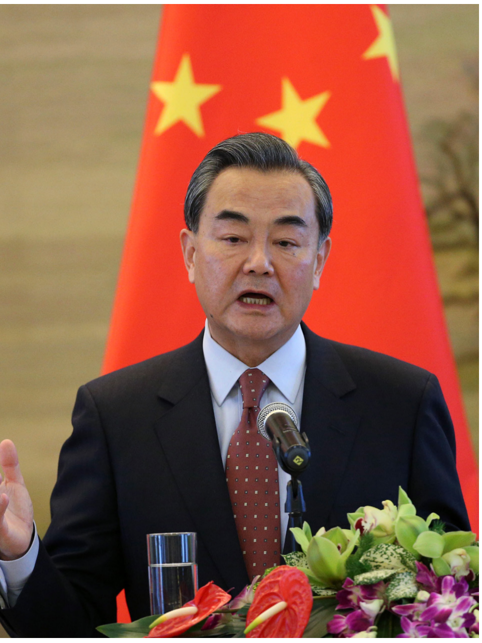

अमेरिका-चीन संबंधों में टकराव खत्म हो: वांग यी

चीन के विदेश मंत्री वांग यी ने अमेरिकी कंपनियों के प्रतिनिधिमंडल से मुलाकात के दौरान अमेरिका के साथ और अधिक संवाद की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। उन्होंने चेतावनी दी कि दोनों वैश्विक शक्तियों के बीच टकराव से अंतरराष्ट्रीय स्थिरता प्रभावित हो सकती है। गोल्डमैन सैक्स, बोइंग और एप्पल जैसे प्रमुख अमेरिकी कंपनियों के प्रतिनिधियों से बातचीत में वांग ने कहा, 'चीन अमेरिका के साथ संवाद को बढ़ावा देने, मतभेदों को प्रबंधित करने और सहयोग के अवसर तलाशने को इच्छुक है।' यह बयान स्टॉकहोम में दोनों देशों के व्यापारिक वार्ताकारों के बीच हुई हालिया बातचीत के बाद आया, जिसमें 90-दिवसीय टैरिफ युद्धविराम को आगे बढ़ाने पर सहमति बनी। वांग ने अमेरिकी कंपनियों को चीनी बाज़ार में विश्वास बनाए रखने और निवेश जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया। वांग यी का यह दौरा बेहद अहम माना जा रहा है। ●

AI नियमों पर G7-EU की सहमति

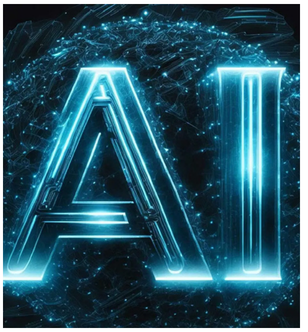

G7 देशों और यूरोपीय संघ ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के लिए साझा नियमों पर सहमति बना ली है। यह सहमति यूरोपीय संघ के AI Act के साथ मेल खाती है, जिसका कार्यान्वयन अगस्त 2025 से शुरू होगा। विशेषज्ञों के अनुसार, यह कानून वैश्विक तकनीकी मानकों को दिशा देगा और AI के सुरक्षित, पारदर्शी और उत्तरदायी उपयोग को बढ़ावा देगा। इसमें डेटा गोपनीयता, एल्गोरिथ्म पारदर्शिता और जोखिम मूल्यांकन जैसे पहलुओं को भी शामिल किया गया है। G7 का यह कदम वैश्विक AI नीति निर्माण में मील का पत्थर माना जा रहा है। ●

आईएमएफ ने दी वैश्विक आर्थिक जोखिम की चेतावनी

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने हाल ही में वैश्विक आर्थिक जोखिमों के बढ़ने को लेकर चेतावनी जारी की है। रिपोर्ट में कहा गया है कि अमेरिका द्वारा आयात शुल्क (टैरिफ) बढ़ाने और कुछ देशों में वित्तीय अस्थिरता से वैश्विक व्यापार और पूंजी प्रवाह प्रभावित हो सकते हैं। इन स्थितियों से विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाएं अधिक दबाव में आ सकती हैं। IMF का मानना है कि यदि टैरिफ युद्ध तेज हुआ तो वैश्विक निवेश घटेगा और मुद्रास्फीति बढ़ सकती है। ●

डॉलर की बढ़ती ताकत से वैश्विक बाजारों पर असर

हाल के हफ्तों में अमेरिकी डॉलर की ताकत में निरंतर वृद्धि देखी गई है, जिससे वैश्विक वित्तीय परिदृश्य में बड़ा बदलाव आ सकता है। डॉलर के मजबूत होने से उभरते बाजारों से पूंजी निकलने की आशंका है, क्योंकि निवेशक सुरक्षित विकल्पों की ओर रुख करते हैं। इसके अतिरिक्त, आयात महंगे होने से कई देशों में मुद्रास्फीति पर दबाव बढ़ सकता है। विशेषज्ञों के अनुसार, डॉलर का यह रुख आने वाले महीनों में वैश्विक व्यापार, कर्ज और निवेश निर्णयों को प्रभावित करेगा। ●

अंतरराष्ट्रीय न्यायालय का ऐतिहासिक जलवायु निर्णय

इस सप्ताह संयुक्त राष्ट्र की शीर्ष न्यायालय अंतरराष्ट्रीय न्यायालय (ICJ) ने जलवायु परिवर्तन पर ऐतिहासिक राय दी, जिसमें देशों को उत्सर्जन कम करने के लिए सहयोग करने को कहा गया। अदालत ने चेतावनी दी कि यदि कोई देश जलवायु समझौतों के तहत अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता, तो प्रभावित देश उस पर अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत मुकदमा कर सकते हैं। न्यायाधीश युजी इवासावा ने इसे 'टिकाऊ पर्यावरण का मानव अधिकार' बताया। ●

BRICS समिट में AI गवर्नेंस पर वैश्विक दिशा-निर्देशन की पहल

ब्रिक्स समिट में चीन और अमेरिका की सहमति से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) शासन के लिए पहली बार वैश्विक दिशा-निर्देशन तैयार किए गए। यह पहल तकनीकी क्षेत्र में बढ़ते भू-राजनीतिक तनावों के बीच वैश्विक सहयोग की एक बड़ी कोशिश मानी जा रही है। दिशा-निर्देशों में AI के नैतिक उपयोग, पारदर्शिता, और डेटा गोपनीयता पर जोर दिया गया है। विशेषज्ञों के अनुसार, यह मसौदा आने वाले वर्षों में वैश्विक AI नीति निर्माण की आधारशिला बनेगा। ●

रूस पर ट्रंप की सख्त चेतावनी से तेल बाजार में हलचल

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने रूस के खिलाफ कड़े तेल निर्यात प्रतिबंधों की समयसीमा अचानक घटाकर 10-12 दिन कर दी है। पहले यह समयसीमा 50 दिनों की थी। स्कॉटलैंड में ब्रिटिश प्रधानमंत्री कीर स्टारमर के साथ बातचीत में ट्रंप ने चेतावनी दी कि यदि यूक्रेन युद्ध खत्म नहीं हुआ, तो रूस के तेल खरीददार देशों—जैसे भारत और चीन—पर 100% टैरिफ लगाए जाएंगे। यह कदम वैश्विक तेल आपूर्ति को झटका दे सकता है, क्योंकि रूस जून में प्रतिदिन 4.68 मिलियन बैरल कच्चा तेल निर्यात कर रहा था। हालांकि बाज़ार पहले ट्रंप की धमकियों को गंभीरता से नहीं लेता रहा है, लेकिन इस बार कीमतों में 3% की तेजी आई है। यदि प्रतिबंध लागू होते हैं, तो अमेरिका में मुद्रास्फीति बढ़ सकती है, जिससे ट्रंप स्वयं भी झिझक सकते हैं। फिर भी, उनकी अनिश्चित नीति निवेशकों को सतर्क कर रही है। ●

रूस में 8.8 तीव्रता का विनाशकारी भूकंप

रूस के सुदूर पूर्वी कमचात्का तट पर बुधवार को आए 8.8 तीव्रता के शक्तिशाली भूकंप ने फ्रेंच पोलिनेशिया और चिली तक सुनामी अलर्ट जारी करवा दिए। भूकंप के बाद कमचात्का का सबसे सक्रिय ज्वालामुखी भी फट पड़ा। कम गहराई वाले इस भूकंप से इमारतें क्षतिग्रस्त हुईं और कई लोग घायल हुए। जापान, हवाई और रूस में शुरुआती सुनामी चेतावनियाँ बाद में घटा दी गईं, लेकिन फ्रेंच पोलिनेशिया के कुछ द्वीपों में लहरें 2.5 मीटर तक पहुंचीं। ●

म्यांमार में अस्थायी नागरिक सरकार का गठन

म्यांमार की सेना ने दिसंबर 2025 में होने वाले चुनाव से पहले गुरुवार को एक अस्थायी नागरिक सरकार का गठन किया, लेकिन शीर्ष सैन्य जनरल मिन आंग हलाइंग ने राष्ट्रपति पद संभालते हुए सत्ता की बागडोर अपने पास ही रखी है। राज्य मीडिया में जारी आदेश के अनुसार, 2021 के सैन्य तख्तापलट के बाद सेना को सौंपी गई सत्ता अब समाप्त कर दी गई है और एक विशेष चुनाव आयोग के साथ एक देखरेख सरकार बनाई गई है। हालांकि, आपातकाल की समाप्ति और सत्ता हस्तांतरण के बावजूद, विश्लेषकों का मानना है कि यह कदम केवल दिखावटी है और वास्तविक शक्ति सेना के पास ही बनी रहेगी। विद्रोह और गृहयुद्ध की स्थिति में चुनाव की वैधता पर सवाल उठ रहे हैं। पश्चिमी देशों ने इस चुनाव को 'नाटक' बताया है। ●

अमित शाह का निर्देश: भगोड़ों की वापसी हो राष्ट्र सुरक्षा की प्राथमिकता

नई दिल्ली में आयोजित नेशनल सिक्योरिटी स्ट्रैटिजीज कांफ्रेंस में गृह मंत्री अमित शाह ने स्पष्ट निर्देश दिए कि आतंकवाद और तस्करी से जुड़े भगोड़े अपराधियों को भारत वापस लाने की कार्रवाई तेज हो। उन्होंने केंद्र व राज्य एजेंसियों को मिलकर काम करने और अंतरराष्ट्रीय सहयोग, कूटनीति व तकनीकी निगरानी की संयुक्त रणनीति अपनाने पर बल दिया। शाह ने एनक्रिप्टेड चैनल्स व टेरर फाइनेंस नेटवर्क्स पर निगरानी के लिए स्थायी एजेंसी गठित करने और स्वदेशी तकनीकों के उपयोग को बढ़ावा देने की बात कही। उन्होंने कहा कि भारत को सिर्फ अपराध से नहीं, बल्कि अपराधी मानसिकता और नेटवर्क से लड़ना है। पिछले 5 वर्षों में CBI ने 134 भगोड़ों को भारत लाने में सफलता पाई हैं। तहव्वुर राणा को अमेरिका से, जोगिंदर ग्योंग को फिलीपींस से, और अन्य को थाईलैंड व अमेरिका से लाया गया है। ●

उत्तर बिहार में जल संकट: सूखे हैंडपंप, सड़क पर उतरे लोग

उत्तर बिहार के दरभंगा, सीतामढ़ी, मधुबनी, समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर, शिवहर और चंपारण जिलों में गंभीर जल संकट उत्पन्न हो गया है। सीतामढ़ी जिले के 80% हिस्सों में हैंडपंप सूख चुके हैं और नल-जल योजना भी विफल साबित हो रही है। मंदिरों से लेकर खेतों तक पानी की किल्लत है। किसानों का कहना है कि खेतों में धान की फसल सूख रही है और पीने का पानी भी मयस्सर नहीं। आंदोलन की चेतावनी देते हुए कई गांवों में मशाल जुलूस निकाले गए हैं और लोग सरकारी दफ्तरों के बाहर प्रदर्शन कर रहे हैं। ●

INS उदयगिरि भारतीय नौसेना में शामिल

भारतीय नौसेना को 1 जुलाई 2025 को एक महत्वपूर्ण बढ़त मिली, जब फ्रिगेट INS उदयगिरि को आधिकारिक रूप से नौसेना में शामिल किया गया। मझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड द्वारा निर्मित यह युद्धपोत अत्याधुनिक हथियार प्रणालियों, सोनार और मिसाइल तकनीक से लैस है, जो दुश्मन की निगरानी से बचते हुए दूर से आक्रमण करने की क्षमता रखता है। INS उदयगिरि की तैनाती हिंद महासागर क्षेत्र में भारत की समुद्री सुरक्षा और स्ट्रैटेजिक पहुंच को मजबूत करेगी। ●

पालतू कुत्तों की लापरवाही बनी जानलेवा

भारत में पालतू कुत्तों के काटने और रेबीज़ संक्रमण के मामलों में तेज़ी से बढ़ोतरी को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने स्वतः संज्ञान लिया है। कोर्ट ने कहा कि यह केवल कानून-व्यवस्था का मुद्दा नहीं, बल्कि एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट है। विशेष रूप से शहरी इलाकों में पालतू कुत्तों द्वारा काटने की घटनाएं बढ़ी हैं, जिनमें कई मामलों में वैक्सीनेशन की कमी पाई गई है। स्वास्थ्य मंत्रालय और पशुपालन विभाग को निर्देश दिए गए हैं कि वे एक नई राष्ट्रीय नीति तैयार करें। ●

राजस्थान: गरीबी-मुक्त ग्राम योजना शुरू

राजस्थान सरकार ने राज्य के ग्रामीण इलाकों में गरीबी उन्मूलन की दिशा में एक नई पहल करते हुए 'गरीबी-मुक्त ग्राम योजना' की शुरुआत की है। इस योजना के तहत राज्य के 5,000 गांवों में BPL (गरीबी रेखा से नीचे) परिवारों को आर्थिक सहायता, कौशल प्रशिक्षण और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं से जोड़ा जाएगा। सरकार का उद्देश्य इन परिवारों की आय बढ़ाना, रोजगार सृजित करना और बुनियादी सेवाएं सुनिश्चित करना है। ●

अडाणी ग्रीन ने 15 हजार मेगावाट सौर क्षमता पार की

अडाणी ग्रीन एनर्जी लिमिटेड (एजीईएल) ने 15,000 मेगावाट की सौर-विद्युत उत्पादन क्षमता पार कर भारत की अक्षय ऊर्जा यात्रा में ऐतिहासिक उपलब्धि दर्ज की है। यह उपलब्धि भारत सरकार के 500 गीगावाट गैर-जीवाश्म ऊर्जा लक्ष्य की दिशा में बड़ा कदम मानी जा रही है। कंपनी ने राजस्थान, गुजरात और कर्नाटक सहित कई राज्यों में बड़े पैमाने पर सौर ऊर्जा परियोजनाएं स्थापित की हैं। एजीईएल का दावा है कि वह प्रतिवर्ष लगभग 26 मिलियन टन कार्बन उत्सर्जन की भरपाई कर रही है। ●

मालेगांव विस्फोट मामला: 17 साल बाद सभी अभियुक्त बरी

विशेष एनआईए अदालत ने 2008 के मालेगांव बम विस्फोट मामले में सभी सात अभियुक्तों को सबूतों के अभाव में बरी कर दिया है। इस धमाके में छह लोगों की मौत और सौ से अधिक लोग घायल हुए थे। मामले में बीजेपी सांसद साध्वी प्रज्ञा ठाकुर, लेफ्टिनेंट कर्नल श्रीकांत पुरोहित सहित सात लोगों पर यूएपीए और आईपीसी की धाराओं के तहत आरोप लगे थे। अदालत ने कहा कि अभियोजन यह साबित नहीं कर सका कि विस्फोट मोटरसाइकिल पर हुआ या आरोपी बम बनाने में शामिल थे। कथित साजिश की बैठकों और आरडीएक्स की सप्लाई का कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिला। फोन रिकॉर्ड जांच में भी वैधानिक प्रक्रियाओं का पालन नहीं हुआ। कुल 323 गवाहों में से 37 मुकर गए। न्यायालय ने कहा कि गंभीर अपराध होने के बावजूद दोष सिद्ध करने के लिए ठोस और निर्विवाद प्रमाण जरूरी होते हैं। सभी को संदेह का लाभ देते हुए बरी किया गया। ●

डिजिटल निजता को संविधानिक संरक्षण

सुप्रीम कोर्ट ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में डिजिटल गोपनीयता को मौलिक अधिकार माना है, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत संरक्षित होगा। यह फैसला 'रायटी बनाम भारत सरकार' मामले में आया है, जिसमें याचिकाकर्ता ने डिजिटल डेटा संग्रह और निगरानी के दायरे को चुनौती दी थी। कोर्ट ने कहा कि तकनीकी युग में व्यक्तिगत डेटा की रक्षा करना नागरिकों की स्वतंत्रता से जुड़ा मसला है। इस निर्णय का सीधा असर डेटा संरक्षण कानून, डिजिटल निगरानी व्यवस्था और सरकार व निजी कंपनियों की डेटा नीतियों पर पड़ेगा। ●

विद्यासागर विश्वविद्यालय में परिचर्चा — 'प्रेमचंद आज के संदर्भ में' विषय पर विचार-विमर्श

विद्यासागर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग ने प्रेमचंद जयंती के अवसर पर 'प्रेमचंद आज के संदर्भ में' विषयक एक विचारगोष्ठी आयोजित की। विभागाध्यक्ष डॉ. प्रमोद कुमार प्रसाद ने स्वागत भाषण में प्रेमचंद के साहित्य को स्वाधीनता संग्राम और ग्रामीण यथार्थ का सशक्त दस्तावेज बताया। डॉ. संजय जायसवाल ने प्रेमचंद को आज की विघटनकारी प्रवृत्तियों के विरुद्ध समग्र भारतीयता का स्वर कहा। शोधार्थियों मदन शाह, सुषमा कुमारी, सोनम सिंह, उष्मिता गौड़, नेहा चौबे और लक्खी चौधरी ने क्रमशः प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री, किसान, शिक्षा, सांप्रदायिकता, ग्रामीण-शहरी यथार्थ और सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला। मो. निसार अहमद अंसारी व सृष्टि गोस्वामी और अर्जुन ने प्रेमचंद के उद्धरणों का पाठ किया। आयोजन में टीना परवीन, लक्ष्मी यादव, संजना गुप्ता व नीशू कुमारी मौजूद रहे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. श्रीकांत द्विवेदी ने किया और धन्यवाद ज्ञापन रिया श्रीवास्तव ने किया। ●

श्रीराजेश, संपादक

अमेरिकी टैरिफ़

'विरोध' नहीं, 'विवेक'

ट्रंप के टैरिफ़ हमले के सामने, भारत ने झुकने से इनकार कर दिया। यह महज़ व्यापार युद्ध नहीं, बल्कि संप्रभुता की रक्षा का संकल्प है। डिजिटल नीति, कृषि सुरक्षा, और नीतिगत स्वतंत्रता - भारत ने राष्ट्रीय हितों के लिए वैश्विक दबाव को ठुकराया है। क्या यह टकराव है, या कूटनीतिक विवेक?

जब अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प 'अमेरिका को पुनः महान' बनाने की हुंकार भरते हैं, तो उनके वाक्यों के पीछे केवल नारा नहीं, एक दो-धारी टैरिफ नीति की तलवार भी छुपी होती है। 1 अगस्त, 2025 को जब उन्होंने भारत से आयातित स्टील, एल्यूमिनियम और अन्य उत्पादों पर 25% टैरिफ लगाने की घोषणा की, तो यह महज़ एक आर्थिक नीति नहीं थी—बल्कि यह भूराजनैतिक दबाव की उद्घोषणा थी। और भारत ने उस उद्घोषणा के समक्ष, न नीति छोड़ी, न नति झुकाई।

यह एक असामान्य व्यापारिक गतिरोध नहीं, बल्कि भविष्य के वैश्विक आर्थिक समीकरणों की नींव रखता हुआ एक निर्णायक मोड़ है। प्रश्न यह नहीं है कि भारत-अमेरिका के बीच व्यापार समझौता क्यों नहीं हुआ, बल्कि कई और प्रश्न उठ खड़े होते है कि आखिर यह स्थिति क्यों उत्पन्न हुई? क्या भारत ने अमेरिका के साथ टकराव का रास्ता चुना है, या यह एक परिपक्व और दूरदर्शी कूटनीतिक कदम है? राष्ट्रीय हित और दीर्घकालिक रणनीति के परिप्रेक्ष्य में इसका क्या अर्थ है? 2024 के उत्तरार्ध से भारत और अमेरिका के बीच व्यापारिक संवाद के कई दौर चले। अमेरिका चाहता था कि भारत— डिजिटल डेटा स्थानीयकरण की नीति में ढील दे, दुग्ध एवं कृषि उत्पादों के बाज़ार को पूर्णतः खोल दे, पेटेंट और बायोमेडिकल इनोवेशन पर अमेरिकी वर्चस्व स्वीकार करे और ई-कॉमर्स क्षेत्र में विदेशी स्वामित्व संबंधी नियंत्रणों को शिथिल करे।

बदले में, अमेरिका 'जनरलाइज्ड सिस्टम ऑफ प्रेफरेंसेज (जीएसपी)' जैसी पुरानी रियायतों की वापसी का संकेत दे रहा था—जो एक समय उसने खुद ही बंद की थी।

परंतु भारत ने हर वार्ता में यह दोहराया कि— डिजिटल संप्रभुता, केवल तकनीकी नीति नहीं, राष्ट्रीय आत्मा की रक्षा है। दुग्ध एवं खाद्य क्षेत्र, केवल आर्थिक क्षेत्र नहीं, करोड़ों ग्रामीण परिवारों की आजीविका हैं।

1 अगस्त से लागू हुआ अमेरिकी टैरिफ—स्टील, एल्यूमिनियम, फार्मास्यूटिकल्स और ऑटो-पार्ट्स पर 25% तक की दर—प्रत्यक्षतः लगभग $8.2 बिलियन के व्यापार को प्रभावित करेगा। लेकिन भारत ने न प्रतिशोध लिया, न आपा खोया। यह मौन था, पर नपातुला, संतुलित और रणनीतिक।

ट्रंप प्रशासन की यह 'टैरिफ-वार' चीन, वियतनाम, ब्राजील सहित कई देशों पर पहले भी चली है, परंतु भारत ने इसे विकासशील राष्ट्रों के ऊपर विकसित देशों की नीति साम्राज्यवादिता के रूप में देखा।

भारत का इनकार टकराव नहीं, बल्कि संप्रभु नीति-निर्माण की घोषणा था। इसके पीछे चार सुदृढ़ रणनीतिक आधार हैं: पहला, **विकल्पों का निर्माण:** भारत ने यूरोपीय संघ, यूएई, अफ्रीका और आसियान के साथ वैकल्पिक मुक्त व्यापार समझौतों की दिशा में तेज़ी से कदम बढ़ाए। जुलाई 2025 में भारत-ईयू के बीच एफटीए पर हस्ताक्षर किये गये, जबकि यूएई और अफ्रीकी देशों के साथ 'स्ट्रैटेजिक कमोडिटी कॉरिडोर' पर काम आरंभ हो चुका है। दूसरा,

आत्मनिर्भरता को नया आयाम: फार्मा, स्टील, इलेक्ट्रॉनिक्स और एग्रो-प्रोसेसिंग जैसे क्षेत्रों में भारत ने निर्यात-निर्भरता कम कर घरेलू उत्पादन एवं क्षेत्रीय बाज़ारों को केंद्र बनाया। पीएलआई योजनाओं में ₹38,000 करोड़ से अधिक की नयी निधि दी गई। तीसरा, **अमेरिकी घरेलू लॉबी को संदेश:** भारत यह जानता है कि ट्रम्प प्रशासन की टैरिफ नीति अमेरिकी फार्मा, ऑटो, और टेक लॉबी के भी हित में नहीं है। भारत इस मुद्दे को डब्ल्यूटीओ में 'गैर-पारदर्शी टैरिफ नीति' के रूप में चुनौती देने की तैयारी में है। और चौथा, **नीति निर्माण की स्वायत्तता की रक्षा:** भारत मानता है कि डिजिटल डेटा, कृषि नीति और पेटेंट क्षेत्र में झुकाव, दीर्घकालिक आत्मनिर्भरता के विलोपन जैसा होगा। यह झुकना नहीं, नीति आत्मसमर्पण होता।

भारत ने अभी तक किसी प्रतिकारात्मक टैरिफ की घोषणा नहीं की—यह कोई कमज़ोरी नहीं, बल्कि रणनीतिक शांति है। विदेश मंत्रालय ने स्पष्ट संकेत दिए हैं कि 'राष्ट्रहित को लेकर भारत की नीति स्थायी और असंवेदनशील नहीं है—परंतु झुकेगी नहीं।'

इस क्रम में भारत ने आसियान, लातिन अमेरिका, और अफ्रीकी संघ के साथ नये बाजारों के लिए बातचीत तेज़ कर दी है। भारत का लक्ष्य अब केवल अमेरिका से व्यापार करना नहीं, बल्कि अमेरिका पर निर्भरता को कम करना है।

संक्षेप में, भारत ने अमेरिका के टैरिफ-प्रहार को एक तात्कालिक आर्थिक आघात मानकर नहीं, बल्कि रणनीतिक कसौटी के रूप में देखा। भारत का यह संकल्प स्पष्ट है—'राष्ट्रीय हित की कीमत पर कोई व्यापार संभव नहीं'।

डिजिटल डेटा नीति, किसानों की सुरक्षा, और नीति निर्माण की स्वतंत्रता—इन सब पर समझौता करके भारत अल्पकालिक लाभ अर्जित कर सकता था। परंतु उस स्थिति में भारत की वैश्विक छवि एक सामर्थ्यहीन, समर्पित राष्ट्र की होती। भारत ने यह निर्णय लेकर यह स्थापित किया है कि— 'राष्ट्र की नीति आत्मनिर्भरता से बनती है, न कि वैश्विक दबाव से।'

भारत का यह नीतिगत धैर्य और दबाव के विरुद्ध संयम अब वैश्विक व्यापार-राजनीति में एक वैकल्पिक मॉडल का निर्माण कर सकता है। यह केवल एक व्यापारिक घटना नहीं, बल्कि यह 21वीं सदी के भारत के नीति-सिद्धांतों की उद्घोषणा है।

व्यापार समझौतों से राष्ट्र समृद्ध होते हैं, आत्मसमर्पण से नहीं। भारत ने यह भलीभांति समझ लिया है। ●

Ajesh

srirajesh.journalist @srirajesh editor@cultcurrent.com

युद्धोन्मादी ड्रैगन ?

जलज श्रीवास्तव

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में वैश्विक भू-राजनीतिक परिदृश्य अभूतपूर्व गति से रूपांतरित हो रहा है। वैश्विक शक्ति का संतुलन, जो कभी संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ (तत्पश्चात रूस) के मध्य तनावों पर केंद्रित था, अब स्पष्ट रूप से एशिया की ओर स्थानांतरित हो रहा है। चीन, जिसने प्रारंभिक तौर पर 'सॉफ्ट पावर' और 'आर्थिक प्रभाव' के माध्यम से अपनी शक्ति का विस्तार किया, वर्तमान में सैन्य क्षेत्र में भी अपनी आक्रामक मंशा का प्रदर्शन कर रहा है। चीन द्वारा युद्ध की तैयारियाँ जिस सुसंगठित, सुनियोजित और निरंतरता के साथ की जा रही हैं, उससे न केवल एशियाई क्षेत्र में, बल्कि संपूर्ण विश्व में चिंता का वातावरण व्याप्त है। भारत के लिए यह चिंता विशेष रूप से गहन है, क्योंकि भारत और चीन की सीमाएं न केवल विस्तृत हैं, अपितु दोनों देशों के मध्य ऐतिहासिक अविश्वास की गहरी खाई भी विद्यमान है।

चीन की पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) अब मात्र एक रक्षात्मक शक्ति के रूप में सीमित नहीं रह गई है। विगत एक दशक में, चीन ने सैन्य आधुनिकीकरण को असाधारण प्राथमिकता प्रदान की है। पीएलए के तीन प्रमुख उद्देश्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं:

प्रौद्योगिकीय उत्थानः चीन अब पारंपरिक युद्ध की सीमाओं को अतिक्रमित करते हुए 'इंटेलिजेंटाइज्ड वॉरफेयर' की दिशा में तीव्रता से आगे बढ़ रहा है। इस रणनीति में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), साइबर क्षमताएँ,

अंतरिक्ष-आधारित निगरानी प्रणाली और ड्रोन प्रौद्योगिकी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। चीन इन अत्याधुनिक तकनीकों को अपनी सैन्य शक्ति का अभिन्न अंग बनाने के लिए व्यापक निवेश कर रहा है, जिससे भविष्य के युद्धों में उसे निर्णायक लाभ प्राप्त हो सके।

रणनीतिक लचीलापन एवं गतिशीलता: चीन ने अपनी सैन्य संरचना का पुनर्गठन करते हुए इसे अधिक लचीला और त्वरित प्रतिक्रिया देने योग्य बनाया है। उसने थिएटर कमांड सिस्टम को कार्यान्वित किया है, जो उसे युद्ध के किसी भी संभावित मोर्चे पर तत्काल कार्रवाई करने में सक्षम बनाता है। यह पुनर्गठन विभिन्न सैन्य अंगों के मध्य समन्वय को बेहतर बनाने और युद्ध की बदलती परिस्थितियों के अनुसार तेजी से अनुकूलन करने की पीएलए की क्षमता को बढ़ाता है।

मानसिक एवं वैचारिक तैयारी: चीनी सैनिकों के प्रशिक्षण में 'वास्तविक युद्ध जैसी परिस्थितियाँ' निर्मित की जा रही हैं। चीन की सरकारी मीडिया और आधिकारिक वक्तव्यों में बार-बार 'तैयारी' और 'संघर्ष के लिए तत्पर रहने' जैसे वाक्यांशों का उपयोग किया जा रहा है। यह मनोवैज्ञानिक अभियान न केवल सैनिकों को युद्ध के लिए मानसिक रूप से तैयार करने का प्रयास करता है, बल्कि घरेलू आबादी को भी संभावित संघर्ष के लिए तैयार रहने का संदेश देता है।

चीन की नीतियों के अंतर्निहित उद्देश्य:

चीन की वर्तमान रणनीति केवल एक सैन्य विस्तार की परियोजना मात्र नहीं है, अपितु यह उसकी दीर्घकालिक भू-राजनीतिक महत्वाकांक्षा का एक अभिन्न भाग है। चीन स्वयं को एशिया के निर्विवाद नेता और संयुक्त राज्य अमेरिका के समकक्ष एक वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापित करना चाहता है।

चीनी सरकार यह मानती है कि उसकी सुरक्षा केवल उसकी राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर ही सीमित नहीं है, अपितु उसका विस्तार उससे बाहर भी है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, यदि आवश्यक हो तो सैन्य बल का प्रयोग करना न केवल उचित है, बल्कि राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए अनिवार्य भी हो सकता है। ताइवान के प्रति उसका आक्रामक रवैया, दक्षिण चीन सागर में कृत्रिम द्वीपों का निर्माण और उन पर सैन्य अड्डों की तैनाती इस विस्तारवादी सोच के स्पष्ट प्रमाण हैं। चीन इन कार्रवाइयों के माध्यम से क्षेत्रीय प्रभुत्व स्थापित करने और अंतर्राष्ट्रीय जलमार्गों पर अपना नियंत्रण बढ़ाने का प्रयास कर रहा है।

भारत के लिए चीन की सैन्य तैयारियों के निहितार्थ:

चीन की उपर्युक्त गतिविधियाँ भारत के लिए विशेष रूप से चिंताजनक हैं, और इसके कई महत्वपूर्ण कारण हैं:

सीमा विवाद एवं वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) पर तनाव: भारत और चीन के मध्य 3488 किलोमीटर लंबी वास्तविक नियंत्रण रेखा आज भी स्पष्ट रूप से सीमांकित नहीं है। वर्ष 2020 में गलवान

घाटी में हुई हिंसक झड़प, जिसमें भारतीय सैनिकों ने अपनी जान की बाजी लगाई, ने यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित कर दिया कि यह सीमा कितनी संवेदनशील है। उस घटना के पश्चात, चीन ने तवांग से लेकर डेपसांग तक अनेक स्थानों पर अपने सैनिकों की तैनाती में वृद्धि की है। इसके अतिरिक्त, उसने तिब्बत में आधारभूत ढाँचे और वायुसेना अड्डों का तेजी से विकास किया है, जिससे सीमावर्ती क्षेत्रों में उसकी सैन्य क्षमता और पहुँच में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

हिंद महासागर में चीन की पैठ: भारत का समुद्री सुरक्षा तंत्र भी अब चीन की बढ़ती गतिविधियों के कारण अत्यधिक सतर्क हो गया है। चीन ने श्रीलंका (हंबनटोटा), पाकिस्तान (ग्वादर) और म्यांमार में कई महत्वपूर्ण बंदरगाहों का निर्माण किया है। यह रणनीति, जिसे 'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स' (मोतियों की माला) के नाम से जाना जाता है, के माध्यम से चीन भारत को समुद्र से भी घेरने की रणनीति पर कार्य कर रहा है, जिससे भारत की नौसैनिक शक्ति और व्यापार मार्गों पर संभावित खतरा उत्पन्न हो सकता है।

चीन-पाकिस्तान गठजोड़: भारत के लिए यह गठजोड़ एक दोहरे खतरे के समान है। चीन और पाकिस्तान के मध्य सैन्य, आर्थिक और रणनीतिक सहयोग अत्यंत प्रगाढ़ हो चुका है। चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (सीपीईसी) के अंतर्गत चीन द्वारा पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर में आधारभूत संरचना में किया गया निवेश भारत की संप्रभुता को एक खुली चुनौती है। इस सहयोग में सामरिक प्रौद्योगिकी, खुफिया जानकारी और संयुक्त सैन्य अभ्यासों का आदान-प्रदान भी शामिल है, जो भारत की सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करता है।

भारत और चीन के मध्य 3488 किलोमीटर लंबी वास्तविक नियंत्रण रेखा आज भी स्पष्ट रूप से सीमांकित नहीं है। वर्ष 2020 में गलवान घाटी में हुई हिंसक झड़प, जिसमें भारतीय सैनिकों ने अपनी जान की बाजी लगाई, ने यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित कर दिया कि यह सीमा कितनी संवेदनशील है। उस घटना के पश्चात, चीन ने तवांग से लेकर डेपसांग तक अनेक स्थानों पर अपने सैनिकों की तैनाती में वृद्धि की है।

चीन की साइबर एवं अंतरिक्ष क्षमताः चीन की साइबर क्षमताएँ विश्व में सर्वाधिक उन्नत मानी जाती हैं। पीपुल्स लिबरेशन आर्मी की एक विशिष्ट इकाई पूर्णतः साइबर जासूसी और नेटवर्क व्यवधान उत्पन्न करने के लिए समर्पित है। भारत जैसे विकासशील देश, जिसकी डिजिटल संरचना तेजी से विकसित हो रही है, परंतु अभी भी पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं है, इस खतरे के प्रति अत्यंत संवेदनशील है। इसके अतिरिक्त, चीन की अंतरिक्ष-आधारित निगरानी प्रणाली भी सीमावर्ती क्षेत्रों में भारत की गतिविधियों पर निरंतर दृष्टि रख रही है, जिससे उसे सामरिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

भारत की रणनीतिक प्रतिक्रिया: क्या यह पर्याप्त है?

भारत ने विगत कुछ वर्षों में चीन की इन तैयारियों के परिप्रेक्ष्य में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए हैंः

सीमा पर आधारभूत संरचना का विस्तारः सीमा सड़क संगठन (बीआरओ) के माध्यम से सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़कों और पुलों का निर्माण तीव्र गति से किया जा रहा है, जिससे सैन्य बलों की आवाजाही और सामग्री की आपूर्ति सुगम हो सके।

सैन्य तैनाती एवं सशक्तिकरणः भारत ने लेह, अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम क्षेत्रों में विशेष बलों और हल्के युद्धक हथियारों की तैनाती में वृद्धि की है, ताकि किसी भी संभावित आक्रमण का प्रभावी ढंग से प्रत्युत्तर दिया जा सके।

रणनीतिक गठबंधनः क्वाड (भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया) और हिंद-प्रशांत रणनीतियों के अंतर्गत भारत ने अपनी कूटनीतिक पहुँच को सुदृढ़ किया है और समान विचारधारा वाले देशों के साथ अपने संबंधों को प्रगाढ़ किया है।

स्वदेशीकरण एवं रक्षा उत्पादनः भारत ने 'मेक इन इंडिया' पहल के तहत हथियारों के स्वदेशी उत्पादन पर विशेष ध्यान केंद्रित किया है, ताकि विदेशी हथियारों पर निर्भरता को कम किया जा सके और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया जा सके।

तथापि, इन प्रयासों के बावजूद भारत को अभी भी अपनी रणनीतिक सोच में अधिक सुसंगति और दीर्घकालिक दृष्टिकोण लाने की आवश्यकता है। चीन जैसी आक्रामक शक्ति का सामना करने के लिए केवल सैन्य शक्ति ही पर्याप्त नहीं होगी, अपितु आर्थिक, कूटनीतिक और सूचना-आधारित रणनीतियों का भी समान महत्व होगा। भारत को इन सभी मोर्चों पर एक एकीकृत और समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

चीन की सैन्य तैयारियाँ केवल उसकी सुरक्षा संबंधी चिंताओं का प्रकटीकरण नहीं हैं—बल्कि वे उसकी वैश्विक शक्ति बनने की महत्वाकांक्षा को साकार करने के शक्तिशाली उपकरण हैं। भारत के लिए यह खतरा न केवल सीमा पर सैनिकों की उपस्थिति तक सीमित है, अपितु यह आर्थिक प्रभुत्व, डिजिटल सुरक्षा, वैचारिक युद्ध और कूटनीतिक दबाव तक विस्तारित है।

भारत को न केवल सैन्य स्तर पर अपनी क्षमताओं को सुदृढ़ करना होगा, बल्कि राष्ट्रीय एकता, तकनीकी आत्मनिर्भरता और रणनीतिक जागरूकता को भी सशक्त बनाना होगा। हमें यह समझना होगा कि इक्कीसवीं सदी के युद्ध पारंपरिक सीमाओं में ही नहीं लड़े जाएंगे—और यदि भारत को एक सशक्त शक्ति के रूप में वैश्विक मंच पर अपनी पहचान बनानी है, तो उसे सभी मोर्चों पर पूर्ण रूप से तैयार रहना होगा। इसके लिए एक सुविचारित, दीर्घकालिक और समग्र राष्ट्रीय रणनीति की आवश्यकता है, जो भारत को चीन की चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करने और अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने में सक्षम बनाएगी। ●

अमेरिका : एकाकी राह

अनवर हुसैन

डोनाल्ड ट्रंप के नेतृत्व में अमेरिका एक ऐसे मोड़ पर आ खड़ा हुआ है, जहाँ वैश्विक नेतृत्व से उसका मोहभंग स्पष्ट होता है। 'अमेरिका फर्स्ट' नीति ने सहयोग की परंपरा को एकतरफा प्रभुत्व से बदल दिया है। पर सवाल यह है — क्या दुनिया अब अमेरिका से पीछे हट रही है, उससे पहले कि अमेरिका खुद पीछे हटे?

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का सत्ता में उभार और उनकी लगातार बनी राजनीतिक लोकप्रियता काफी हद तक इस धारणा पर आधारित रही है कि अमेरिका अब एक असफल राष्ट्र बन चुका है—थका हुआ, कमजोर और पतन की ओर अग्रसर। लेकिन इस स्वघोषित विफलता के विपरीत, ट्रंप की विदेश नीति अमेरिका की शक्ति का अत्यधिक आकलन करती है। ट्रंप और उनके सलाहकार ऐसा मानते हैं कि भले ही देश आंतरिक रूप से संकटग्रस्त हो, वाशिंगटन की एकतरफा कार्रवाइयों से अब भी दुनिया को झुकाया जा सकता है और अमेरिकी शर्तों पर मजबूर किया जा सकता है।

लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अमेरिका की ताकत का मूल स्रोत ज़बरदस्ती नहीं बल्कि सहयोग रहा है। ट्रंप की टीम इस ऐतिहासिक सच्चाई को नजरअंदाज करती है, उन सभी लाभों को सहज मान लेती है जो सहयोगपरक दृष्टिकोण ने दिए, और वे उस भविष्य की कल्पना करने में असमर्थ हैं जहाँ अन्य देश अमेरिका के नेतृत्व वाले मौजूदा अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था से बाहर निकलने का निर्णय लें या एक नई व्यवस्था तैयार करें जो अमेरिकी हितों के प्रतिकूल हो। परंतु यही वह परिदृश्य है जिसे ट्रंप प्रशासन तेजी से वास्तविकता में बदल रहा है।

राजनीति विज्ञानी माइकल बेकली ने फॉरेन अफेयर्स में तर्क दिया है कि अमेरिका अब 'एक विद्रोही महाशक्ति' बनता जा रहा है—ना तो अंतरराष्ट्रीयतावादी और ना ही पूरी तरह से अलग-थलग, बल्कि आक्रामक, शक्तिशाली और अपने हितों के लिए हर सीमा तक जाने को तत्पर। यह चित्रण काफी हद तक सटीक है, लेकिन यह इस बात को पूरी तरह नहीं दर्शाता कि अमेरिकी वर्चस्व को अन्य देशों द्वारा कैसे सीमित या कमजोर किया जा सकता है।

ट्रंप के कार्यकाल में यह सवाल अक्सर उठता रहा है कि क्या अमेरिका वैश्विक नेतृत्व की अपनी भूमिका से पीछे हट रहा है या नहीं। लेकिन इससे कहीं अधिक जरूरी प्रश्न यह हैः क्या बाकी दुनिया अमेरिका से पहले ही पीछे हटने लगी है? क्या दुनिया अब उस सहयोगी व्यवस्था से बाहर निकलने लगी है जो दशकों से अमेरिकी शक्ति की नींव रही है?

कुछ विश्लेषकों का यह मानना है कि भले ही अमेरिका के सहयोगी या तटस्थ देश ट्रंप के तरीके से असहमत हों, उनके पास अभी अमेरिका के साथ चलने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। दीर्घकाल में वे इसी व्यवस्था के साथ तालमेल बिठा लेंगे, अमेरिका को यथासंभव प्रसन्न रखने की कोशिश करेंगे, और केवल ज़रूरी होने पर ही वैकल्पिक रणनीतियाँ अपनाएंगे। आखिरकार, वे अमेरिका से भले ही नाराज़ और अविश्वासी हो जाएँ, लेकिन चीन, रूस या अन्य प्रतिस्पर्धियों की तुलना में अमेरिका अब भी उन्हें कम खतरनाक लगेगा।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, ट्रंप के नेतृत्व में अमेरिका भले ही सबसे बुरा वैश्विक नेतृत्वकर्ता हो, लेकिन बाकी संभावित नेतृत्वकर्ताओं की तुलना में वह फिर भी सबसे बेहतर है। इसके अलावा, अगर अन्य देश अमेरिका-नेतृत्व वाली व्यवस्था से बाहर निकलना भी चाहें, तो वे ऐसा करने की सामूहिक या व्यक्तिगत क्षमता नहीं रखते। वे शायद उस समय को याद करें जब अमेरिका अधिक अंतरराष्ट्रीयवादी, खुला और सहयोगी हुआ करता था, लेकिन अब उन्हें एक अधिक राष्ट्रवादी, आत्मकेंद्रित और कठोर अमेरिका के साथ जीना सीखना होगा।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: अमेरिका और सहयोगी राष्ट्र:

अमेरिका का वैश्विक वर्चस्व मात्र उसकी सैन्य शक्ति का प्रतिफल नहीं था। द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के उपरांत, अमेरिका ने

दूरदर्शिता एवं रणनीतिक कौशल का प्रदर्शन करते हुए एक ऐसी वैश्विक व्यवस्था का निर्माण किया जो साझा वैचारिक आधार, सुदृढ़ संस्थागत संरचना और पारस्परिक विश्वास की नींव पर प्रतिष्ठित थी। मार्शल योजना के माध्यम से युद्ध-जर्जरित यूरोप का पुनरुद्धार करना हो, अथवा उत्तर अटलांटिक संधि संगठन जैसे सैन्य गठबंधनों का निर्माण करना हो, अमेरिका ने अपने सहयोगियों को न केवल वित्तीय एवं सुरक्षात्मक सहायता प्रदान की, अपितु उन्हें एक साझा उद्देश्य की भावना से भी जोड़ा, जिससे वे स्वयं को अमेरिका के समकक्ष अनुभव कर सकें, न कि उसके अधीनस्थ। शीत युद्ध के दौरान, अमेरिका ने लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा एवं साम्यवाद के प्रसार को अवरुद्ध करने के लिए अपने सहयोगी राष्ट्रों के साथ मिलकर एक सुदृढ़ मोर्चाबंदी की। इस कालखंड में, अमेरिका का नेतृत्व न केवल दिशा-निर्देशक था, अपितु उसने अंतर्राष्ट्रीय नियमों एवं कानूनों के अनुपालन को भी सुनिश्चित किया, जिससे वैश्विक स्तर पर उसकी विश्वसनीयता एवं स्वीकार्यता में अभिवृद्धि हुई।

परंतु, वर्तमान परिदृश्य इस स्वर्णिम युग के अवसान का संकेत देता है। विशेष रूप से एक पूर्ववर्ती प्रशासन के दौरान, 'अमेरिका फर्स्ट' की नीति ने दशकों से स्थापित अंतर्राष्ट्रीय साझेदारियों की आधारशिला को गंभीर रूप से क्षीण किया। उस प्रशासन ने विश्व व्यापार संगठन, विश्व स्वास्थ्य संगठन, नाटो और पेरिस जलवायु समझौते जैसे महत्वपूर्ण बहुपक्षीय मंचों से न केवल अपनी दूरी बनाई, अपितु अनेक अवसरों पर इन संस्थाओं की प्रभावकारिता पर भी प्रश्नचिह्न लगाए। इस नीति ने स्पष्ट संकेत दिया कि अमेरिका अब वैश्विक नेतृत्व की पारंपरिक, सहयोगी भूमिका से पीछे हट रहा है और अपनी घरेलू प्राथमिकताओं को अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से वरीयता प्रदान कर रहा है। इस प्रवृत्ति ने न केवल अमेरिका के पारंपरिक सहयोगियों को निराश किया, अपितु वैश्विक स्तर पर उसकी विश्वसनीयता और नेतृत्व क्षमता पर भी गंभीर संदेह उत्पन्न किए।

समकालीन चुनौतियां और अमेरिका की रणनीतिक दुविधा:

इक्कीसवीं सदी ने भू-राजनीतिक परिदृश्य में अनेक नवीन एवं जटिल चुनौतियों को जन्म दिया है, जिनका अकेले किसी भी राष्ट्र के लिए प्रभावी ढंग से सामना करना लगभग असंभव है। चीन का तीव्र आर्थिक एवं सैन्य उत्थान, रूस की बढ़ती आक्रामकता, कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी, अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का खतरा, और जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दे वैश्विक स्तर पर शांति, सुरक्षा एवं समृद्धि के लिए गंभीर संकट उत्पन्न करते हैं। वर्तमान नीतियां इन जटिल एवं अंतर्संबंधित समस्याओं से सामूहिक रूप से निपटने की वैश्विक क्षमता को कमजोर कर रही हैं।

हालांकि एक वर्तमान प्रशासन ने अपने पूर्ववर्ती की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं बहुपक्षवाद की भावना को पुनः स्थापित करने की दिशा में कुछ प्रयास किए हैं। अमेरिका ने पेरिस समझौते में पुनः सम्मिलित होकर और कुछ अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ अपने संबंधों को सुदृढ़ करके सकारात्मक संकेत दिए हैं। तथापि, अमेरिका की विश्वसनीयता अब पूर्ववत नहीं रही है। नाटो सदस्य राष्ट्रों में इस बात को लेकर आशंका बनी हुई है कि क्या अमेरिका भविष्य में अपनी पूर्ववर्ती नीतियों पर वापस नहीं लौट आएगा। इसी प्रकार, एशिया में क्वाड जैसे महत्वपूर्ण रणनीतिक मंचों पर भी भारत, जापान और ऑस्ट्रेलिया जैसे सहयोगी राष्ट्र इस चिंता से ग्रस्त हैं कि क्या अमेरिका

दीर्घकालिक रूप से इस क्षेत्र में अपनी प्रतिबद्धता का निर्वाह करेगा अथवा घरेलू राजनीतिक बाध्यताओं के चलते वह अपनी नीतियों में अप्रत्याशित परिवर्तन कर सकता है। यह अनिश्चितता इन राष्ट्रों को अपनी विदेश एवं सुरक्षा नीतियों के संबंध में अधिक सतर्क एवं स्वतंत्र रूप से विचार करने के लिए प्रेरित कर रही है।

चीन का उदय और अमेरिकी एकाकीपन:

चीन का असाधारण आर्थिक एवं सैन्य उत्थान निःसंदेह संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए सबसे बड़ी रणनीतिक चुनौती के रूप में उभरा है। यदि अमेरिका अपने पारंपरिक सहयोगियों से विमुख होता है, तो वह चीन के बढ़ते प्रभाव का प्रतिरोध करने के लिए एक अकेली शक्ति बनकर रह जाएगा, जो रणनीतिक रूप से हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

चीन न केवल अपने महत्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव के माध्यम से यूरेशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के असंख्य राष्ट्रों को आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से आकर्षित कर रहा है, अपितु वह दक्षिण चीन सागर में अपनी सैन्य उपस्थिति को सुदृढ़ करके और तकनीकी क्षेत्र में तीव्र प्रगति करके वैश्विक शक्ति संतुलन को तेजी से परिवर्तित कर रहा है। चीन अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी अपनी भूमिका का विस्तार कर रहा है और बहुपक्षीय संस्थाओं में अपने प्रभाव को बढ़ा रहा है। ऐसे परिदृश्य में, अमेरिका के लिए अपने पारंपरिक सहयोगियों के साथ एकजुट होकर खड़ा होना ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति हो सकती है। यदि अमेरिका अपने सहयोगियों को पृथक अनुभव कराता है अथवा उनके हितों की उपेक्षा करता है, तो वह न केवल चीन के बढ़ते प्रभाव का प्रभावी ढंग से प्रतिरोध करने की क्षमता खो देगा, अपितु वैश्विक नियमों एवं मानदंडों को बनाए रखने के अपने प्रयासों में भी कमजोर पड़ जाएगा।

लोकतांत्रिक मूल्यों पर संकट:

अमेरिका का 'अकेला पड़ना' मात्र कूटनीतिक विफलता अथवा रणनीतिक दुर्बलता का प्रतीक नहीं है, अपितु यह वैश्विक स्तर पर लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में ह्रास का भी द्योतक है। लंबे समय तक, अमेरिका ने विश्व भर में लोकतंत्र, मानवाधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिद्धांतों का पुरोधा रहा है। उसने न केवल इन मूल्यों का समर्थन किया, अपितु अनेक अवसरों पर उनके संरक्षण में हस्तक्षेप भी किया। अमेरिका का यह नैतिक प्राधिकार उसके वैश्विक नेतृत्व का एक महत्वपूर्ण आधार था।

तथापि, पिछले दशक में अमेरिका के भीतर घटित कुछ घटनाओं ने इस नैतिक श्रेष्ठता को गंभीर चुनौती दी है। कैपिटल हिल पर हुई अप्रिय घटनाएं, नस्लीय असमानता को लेकर राष्ट्रव्यापी विरोध प्रदर्शन, मीडिया की स्वतंत्रता एवं विश्वसनीयता पर बढ़ते हुए आक्षेप, और न्यायपालिका का राजनीतिकरण जैसे आंतरिक घटनाक्रमों ने अमेरिका की लोकतांत्रिक नींव को कमजोर किया है और वैश्विक स्तर पर उसकी छवि को धूमिल किया है। जब स्वयं अमेरिका में लोकतांत्रिक मूल्यों

का क्षरण होता हुआ प्रतीत होता है, तो उसके लिए विश्व को लोकतंत्र का उपदेश देना और उसका नेतृत्व करना अधिक कठिन हो जाता है। अमेरिका का 'एकाकीपन' इस संदर्भ में न केवल उसकी विदेश नीति को कमजोर करता है, अपितु यह उन लोकतांत्रिक शक्तियों के लिए भी निराशा का कारण बनता है जो विश्व भर में स्वतंत्रता एवं मानवाधिकारों के लिए संघर्षरत हैं।

यूरोप एवं एशिया की भूमिका:

यदि अमेरिका वैश्विक नेतृत्व की भूमिका से पीछे हटता है अथवा अपनी प्रतिबद्धताओं के संबंध में अनिश्चितता प्रदर्शित करता है, तो यूरोपीय संघ, यूनाइटेड किंगडम, जापान और भारत जैसे महत्वपूर्ण

राष्ट्रों पर वैश्विक चुनौतियों का सामना करने और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बनाए रखने की अधिक जिम्मेदारी आ सकती है। तथापि, यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि क्या ये राष्ट्र इस बढ़ी हुई जिम्मेदारी का निर्वाह करने के लिए पूर्णतः सक्षम हैं।

विशेष रूप से यूरोप के संदर्भ में, यूरोपीय संघ अमेरिका के बिना एक अधिक स्वतंत्र एवं स्वायत्त रणनीतिक पहचान विकसित करने की दिशा में प्रयत्नशील है। रूस-यूक्रेन संघर्ष ने यूरोपीय राष्ट्रों को अपनी सुरक्षा एवं रक्षा नीतियों पर पुनर्विचार करने के लिए विवश किया है। तथापि, आर्थिक, सैन्य एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से, अमेरिका की दीर्घकालिक उपस्थिति एवं समर्थन की अनुपस्थिति को तत्काल प्रतिस्थापित कर पाना यूरोपीय राष्ट्रों के लिए एक बड़ी चुनौती होगी।

भारत और जापान जैसे एशियाई राष्ट्र, जो लोकतांत्रिक मूल्यों एवं रणनीतिक हितों के दृष्टिकोण से अमेरिका के स्वाभाविक सहयोगी हैं, वे भी यह अपेक्षा रखते हैं कि अमेरिका इस क्षेत्र में स्थायी रूप से अपनी साझेदारी का निर्वाह करे, न कि मात्र अवसरवादी दृष्टिकोण अपनाए। चीन के बढ़ते हुए प्रभाव को देखते हुए, इन राष्ट्रों के लिए अमेरिका के साथ मजबूत संबंध बनाए रखना अपनी सुरक्षा एवं क्षेत्रीय स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है। तथापि, अमेरिका की घरेलू राजनीतिक अस्थिरता एवं उसकी विदेश नीति में अप्रत्याशित परिवर्तनों की आशंकाएं इन राष्ट्रों को अपनी रणनीतिक स्वायत्तता बनाए रखने एवं अन्य शक्तियों के साथ भी अपने संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं।

अमेरिका को किस दिशा में अग्रसर होना चाहिए?

संयुक्त राज्य अमेरिका एक महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़ा है, जहां उसे यह निर्णायक विकल्प चुनना होगा कि क्या वह वास्तव में एक 'अकेले योद्धा' की भांति वैश्विक व्यवस्था से विमुख रहना चाहता है, अथवा उसे अपने पारंपरिक सहयोगियों के साथ मिलकर एक अधिक समावेशी, संतुलित एवं बहुपक्षीय वैश्विक व्यवस्था का अभिन्न अंग बनना चाहिए।

एकतरफा निर्णय लेने एवं आत्म-केंद्रित विदेश नीति का अनुसरण करने से अमेरिका को संभवतः अल्पकालिक राजनीतिक लाभ प्राप्त हो सकता है, परंतु इसके दूरगामी दुष्परिणाम कहीं अधिक गंभीर एवं विनाशकारी होंगे। वैश्विक चुनौतियों की जटिलता एवं अन्य शक्तियों के उदय को ध्यान में रखते हुए, अमेरिका के लिए अपने सहयोगियों के साथ मिलकर कार्य करना न केवल उसकी अपनी सुरक्षा एवं समृद्धि के लिए आवश्यक है, अपितु वैश्विक स्थिरता एवं व्यवस्था को बनाए रखने के लिए भी अपरिहार्य है।

निष्कर्ष:

यदि विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली लोकतंत्र अपनी दशकों पुरानी साझेदारियों को कमजोर करता है और एकाकी मार्ग का चुनाव करता है, तो न केवल वैश्विक स्थिरता एवं सुरक्षा खतरे में पड़ेगी, अपितु स्वतंत्रता, मानवाधिकार एवं लोकतंत्र जैसे वे मूल्य भी संकटग्रस्त हो जाएंगे जिनका अमेरिका ने दीर्घकाल तक समर्थन किया है।

वर्तमान में, जब वैश्विक परिदृश्य बहुध्रुवीय होता जा रहा है और वैश्विक चुनौतियाँ राष्ट्रीय सीमाओं से परे व्याप्त हैं, तो एकाकी प्रयास करना वीरता नहीं, अपितु एक गंभीर भूल सिद्ध हो सकता है। अमेरिका को यह गहनता से समझना होगा कि उसका वास्तविक एवं चिरस्थायी नेतृत्व वर्चस्व में नहीं, अपितु सहयोग में निहित है; एकतरफा शक्ति प्रदर्शन में नहीं, अपितु सामूहिक सुरक्षा की भावना में निहित है। अकेले अमेरिका का भविष्य सीमित है, जबकि अपने सहयोगियों के साथ समन्वय स्थापित करने वाले अमेरिका का भविष्य अधिक समृद्ध, सुरक्षित एवं स्थिर हो सकता है। यह विचार आज की भू-राजनीतिक चर्चा का केंद्रीय विषय होना चाहिए। •

अनवर हुसैन वरिष्ठ पत्रकार एवं व्याख्याता है।

अफ्रीका में भारत का दांव

अफ्रीका, जो कभी वैश्विक भू-राजनीति की परिधि में था, आज वैश्विक प्रतिस्पर्धा का नया अखाड़ा बन गया है। चीन, अमेरिका और खाड़ी देशों के बीच भारत अब एक सोच-समझकर बढ़ता हुआ खिलाड़ी है। 'कल्ट करंट' की इस स्पेशल स्टोरी में हम पड़ताल करेंगे भारत की अफ्रीकी नीति, उसके अवसरों, सीमाओं और रणनीतिक भविष्य की।

आकांक्षा शर्मा

अफ्रीका, जो लंबे समय से वैश्विक शक्ति की राजनीति में हाशिए पर रहा है, अब एक नई भू-राजनीतिक प्रतियोगिता का केंद्र बन गया है। खनिज समृद्ध रेगिस्तानों से लेकर समुद्री मार्गों तक, यह महाद्वीप एक रणनीतिक शतरंज की बिसात के रूप में उभर रहा है जहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, रूस, यूरोपीय संघ और खाड़ी देशों सहित वैश्विक शक्तियाँ सक्रिय रूप से प्रभाव के लिए प्रतिस्पर्धा कर रही हैं। जैसे-जैसे यह 'नया महान खेल' तेज होता जा रहा है, एक शांत लेकिन महत्वपूर्ण खिलाड़ी - भारत - भी अफ्रीका में खुद को पुनः स्थापित कर रहा है। नई दिल्ली के लिए, यह प्रतियोगिता केवल प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ने के बारे में नहीं है; यह राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित करने के बारे में है जो महाद्वीप की आर्थिक संभावनाओं, रणनीतिक भूगोल और जनसांख्यिकीय गतिशीलता से अटूट रूप से जुड़े हुए हैं।

अफ्रीका में भारत की छाप: विरासत, लाभ और सीमाएँ

अफ्रीका के साथ भारत का जुड़ाव नया नहीं है। यह साझा औपनिवेशिक अनुभवों, दक्षिण-दक्षिण एकजुटता और तीस लाख से अधिक लोगों के एक मजबूत प्रवासी भारतीयों के माध्यम से बुने गए एक समृद्ध ऐतिहासिक ताने-बाने पर आधारित है, खासकर पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका में। इन समुदायों ने सांस्कृतिक और वाणिज्यिक संबंधों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे भारत को एक ऐसी नरम शक्ति मिली है जिसका मुकाबला कुछ ही बाहरी खिलाड़ी कर सकते हैं। वर्षों से, भारत ने रियायती ऋण लाइनों, मानवीय सहायता, क्षमता निर्माण कार्यक्रमों और डिजिटल सार्वजनिक वस्तुओं पर एक मजबूत जोर के माध्यम से अपने विकास कूटनीति का विस्तार किया है। पैन-अफ्रीकी ई-नेटवर्क परियोजना और आईटीईसी (भारतीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग) जैसी पहल ने भारत की छवि को एक विकास भागीदार के रूप में बढ़ाया है जो शोषण के बजाय सशक्तिकरण पर ध्यान केंद्रित करता है। फिर भी, इन विरासत की ताकत के बावजूद, चीन की वित्तीय ताकत और पश्चिम की सैन्य-औद्योगिक पहुँच की तुलना में भारत एक मामूली खिलाड़ी बना हुआ है।

रणनीतिक दांव: अफ्रीका का भारत के लिए क्या महत्व है

अफ्रीका भारत को आर्थिक और रणनीतिक अवसरों का एक दुर्लभ संगम प्रदान करता है। सबसे पहले, ऊर्जा सुरक्षा है; नाइजीरिया, अंगोला और मोज़ाम्बिक सहित कई अफ्रीकी देश तेल और गैस के महत्वपूर्ण स्रोत हैं जो भारत के आयात टोकरी में विविधता ला सकते हैं। दूसरा, अफ्रीका दुर्लभ पृथ्वी तत्वों, कोबाल्ट और लिथियम के पर्याप्त भंडार का घर है, जो भारत के हरित ऊर्जा परिवर्तन और तकनीकी निर्माण के लिए महत्वपूर्ण हैं। तीसरा, अफ्रीकी महाद्वीपीय मुक्त व्यापार क्षेत्र (एएफसीएफटीए) - भाग लेने वाले देशों की संख्या के हिसाब से दुनिया का सबसे बड़ा - भारतीय व्यवसायों के लिए नए बाजारों की तलाश में एक स्प्रिंगबोर्ड प्रदान करता है। भारत के फार्मास्युटिकल, फिनटेक और कृषि प्रौद्योगिकी क्षेत्र अफ्रीका के बढ़ते मध्यम वर्ग और युवा आबादी में उपजाऊ जमीन पा सकते हैं। समुद्री सुरक्षा एक और महत्वपूर्ण पहलू है। भारत के लगभग 90%

व्यापार की मात्रा हिंद महासागर से होकर गुजरती है, इसलिए प्रमुख समुद्री मार्गों को सुरक्षित करना महत्वपूर्ण है, खासकर पूर्वी अफ्रीका के तट पर लगने वाले मार्गों को। सेशेल्स और मॉरीशस जैसे स्थानों में भारतीय नौसेना की उपस्थिति सही दिशा में एक कदम है, लेकिन नई दिल्ली को अपने समुद्री संचार लाइनों की रक्षा के लिए तटीय अफ्रीकी राज्यों के साथ सुरक्षा सहयोग को गहरा करना चाहिए।

चुनौतियाँ: कमरे में दिग्गज

हालांकि, भारत की अफ्रीका की आकांक्षाओं को जबरदस्त चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) के तहत अफ्रीका में चीन की उपस्थिति व्यापक और मजबूत है, जो विशाल बुनियादी ढांचा परियोजनाओं, ऋण-वित्तपोषित निवेशों और राजनयिक आक्रमकता में प्रकट होती है। जिबूती में बंदरगाहों से लेकर केन्या में रेल लाइनों तक, चीन ने खुद को अफ्रीका की आर्थिक और रणनीतिक वास्तुकला में एम्बेड कर लिया है। भारत के सतर्क और आवश्यकता-आधारित निवेशों के विपरीत, चीन का दृष्टिकोण आक्रामक है, अक्सर प्रतियोगियों को पछाड़ता है और तेजी से कार्यान्वयन प्रदान करता है। साथ ही, अमेरिका और उसके पश्चिमी सहयोगी आतंकवाद विरोधी और सुरक्षा सहयोग के बैनर तले अफ्रीका में अपनी सैन्य उपस्थिति तेज कर रहे हैं। जिबूती में कैंप लेमोनिअर जैसे सैन्य अड्डों और रणनीतिक चौकियों की स्थापना ने कूटनीति का सैन्यीकरण कर दिया है और प्रतियोगिता में एक कठोर शक्ति आयाम जोड़ा है। भारत, गैर-हस्तक्षेप के अपने सिद्धांत और संप्रभुता पर जोर देने के साथ, इस गति या अपील से मेल खाने के लिए संघर्ष करता है। इसके अलावा, यूएई और सऊदी अरब जैसे खाड़ी देश, विशेष रूप से हॉर्न ऑफ अफ्रीका में, अपनी वित्तीय ताकत और धार्मिक-सांस्कृतिक संबद्धता का लाभ उठाते हुए रणनीतिक प्रवेश कर रहे हैं। निवेश के पैमाने और वैचारिक अपील दोनों की कमी के कारण, भारत को छाया में जाने का खतरा है जब तक कि वह अपनी रणनीति को फिर से कैलिब्रेट न करे।

आगे का रास्ता: नीतिगत बदलाव और राजनयिक चपलता

इस विकसित हो रहे अफ्रीकी गणित में प्रासंगिक बने रहने के लिए, भारत को एक बहुआयामी रणनीति अपनाने की आवश्यकता है। इस रणनीति में डिजिटल बुनियादी ढांचे, स्वास्थ्य सेवा और नवीकरणीय ऊर्जा जैसे प्रमुख क्षेत्रों में सहायता-आधारित जुड़ाव से स्केलेबल निवेश में बदलाव करके निवेश को बढ़ाना शामिल है, दीर्घकालिक प्रतिबद्धता को प्रोजेक्ट करने के लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी का लाभ उठाना। इसके लिए रणनीतिक साझेदारी बनाने, चीन के प्रभुत्व को कम करने और संसाधनों को जमा करने में मदद करने के लिए जापान, फ्रांस या यूएई जैसे समान विचारधारा वाले देशों के साथ संयुक्त उद्यमों और विकासात्मक सहयोग के लिए हाथ मिलाने की भी आवश्यकता है। इसके अलावा, नौसैनिक कूटनीति को बढ़ाकर, अफ्रीकी शांति मिशनों में अधिक सक्रिय भागीदारी और अफ्रीकी देशों को समुद्री प्रशिक्षण कार्यक्रम की पेशकश करके समुद्री और सुरक्षा कूटनीति को बढ़ाया जाना चाहिए, संभावित रूप से एक समन्वित भारत-अफ्रीका समुद्री सुरक्षा संवाद स्थापित करना चाहिए। संस्थागत जुड़ाव भी महत्वपूर्ण है, जिसके लिए भारत-अफ्रीका फोरम शिखर सम्मेलन (आईएएफएस) जैसे प्लेटफार्मों को नियमित और अधिक परिणाम-उन्मुख बनाने के साथ-साथ बेहतर स्टाफिंग और स्थानीय ज्ञान के साथ अफ्रीका में भारतीय मिशनों को मजबूत करने की आवश्यकता है। अंत में, डिजिटल सार्वजनिक वस्तुओं को एक प्रमुख पहल के रूप में नियोजित किया जाना चाहिए, डिजिटल संप्रभुता और समावेशी विकास के ढांचे के तहत अफ्रीकी देशों के साथ आधार और यूपीआई जैसे प्लेटफार्मों के साथ भारत की सफलता को साझा करना, जिससे पारंपरिक सहायता से परे रणनीतिक निर्भरताएं पैदा हों।

निष्कर्ष: न चूकने का क्षण

अफ्रीका में नया महान खेल शीत युद्ध की शक्ति की राजनीति का पुनरावृत्ति मात्र नहीं है; यह वैश्विक व्यवस्था का एक पुनः निर्धारण है जहां विकासात्मक मॉडल, मूल्यों और प्रभाव का परीक्षण किया जा रहा है। भारत के लिए, प्रतियोगिता केवल चीन या पश्चिम के साथ नहीं है, बल्कि समय के साथ है। यदि नई दिल्ली सक्रिय रूप से अपनी नीतियों को फिर से संरेखित कर सकती है, अपने गठबंधनों का विस्तार कर सकती है और अफ्रीका के भविष्य में चतुराई से निवेश कर सकती है, तो यह न केवल अपने राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित करेगी बल्कि समानता और साझेदारी में निहित एक विश्वसनीय वैश्विक अभिनेता के रूप में अपनी भूमिका को भी मजबूत करेगी। अफ्रीका का क्षण आ गया है - और भारत को यह तय करना होगा कि इस सामने आ रहे खेल में दर्शक, एक सहायक खिलाड़ी या एक रणनीतिक वास्तुकार बनना है या नहीं। •

अकांक्षा शर्मा अपने कार्य में जिज्ञासा एवं दृढ़ विश्वास के साथ कल्ट करंट में योगदान देती हैं।

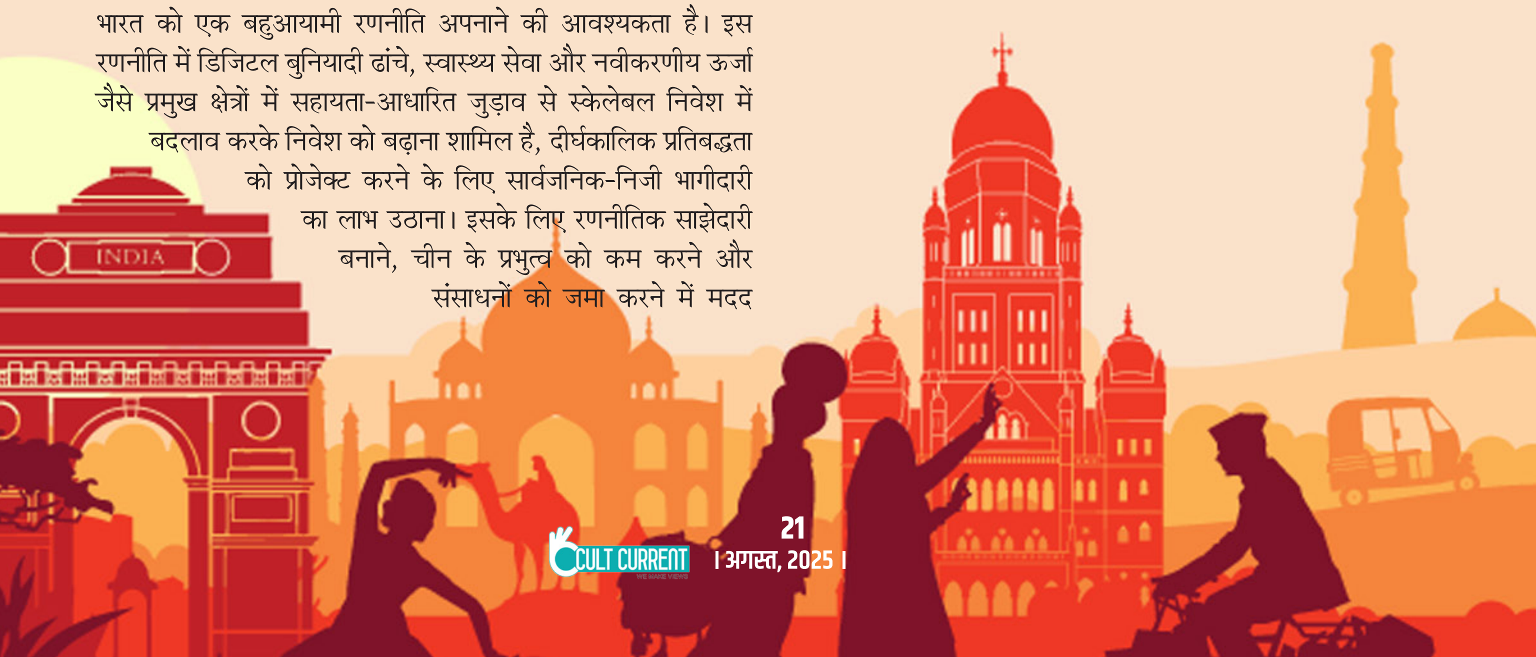

भारत और नाटो

रक्षा सौदों की रस्साकशी

संजय श्रीवास्तव

नाटो देशों ने अपना रक्षा खर्च बढ़ाकर अपनी-अपनी जीडीपी के पाँच प्रतिशत तक करने पर सहमति जताई है। यह चीन और रूस दोनों के लिए चिंताजनक है, और कुछ लोग इसे भारत के लिए हथियार बेचकर अरबों कमाने का सुनहरा मौका बता रहे हैं। इन दावों में कितना दम है?

डोनाल्ड ट्रम्प ने रूस से भय दिखाकर और नाटो से अलग होने की धमकी देकर बाकी 31 देशों (स्पेन को छोड़कर) को नतमस्तक कर दिया। फलस्वरूप, वे 2032 तक अपना रक्षा बजट अपने सकल घरेलू उत्पाद का 5% तक करने पर राजी हो गए। ट्रम्प की चालाकियां, नीतिगत रणनीति और पैंतरे, जो उनके साथ शामिल अधिकतर छोटे यूरोपीय देशों के लिए हों, हम पर खास असर न डालते हों, तो इस बारे में हमारी खुशी या चिंता का कोई खास कारण नहीं है। लेकिन, भू-राजनीतिक समीकरण उतने एकरेखीय नहीं होते जितने अमूमन नजर आते हैं। उनमें कई परोक्ष अंतर्संबंध गुंफित होते हैं। तिस पर, भारतीय विश्लेषकों ने इस खबर से अखबार रंग दिए हैं कि अमेरिकी प्रस्ताव (जिसे धमकी कहना उचित होगा) स्वीकार लेने से तमाम नाटो देशों का रक्षा बजट दोगुना, तिगुना होगा, तो हमारे हथियार, सैन्य प्रणाली और उपकरण खूब बिकेंगे। हम और हमारी कंपनियां इस बाजार में बड़े खिलाड़ी के तौर पर स्थापित होंगे।

क्या हथियार बाजार में आएगी बाढ़?

फ्रांस, अमेरिका के अलावा एशिया और अफ्रीका के कई विकासशील देश भारतीय हथियारों में रुचि ले रहे हैं। फिलीपींस ब्रह्मोस खरीद रहा है, तो वियतनाम नौसैनिक उपकरण, मॉरीशस, सेशेल्स, श्रीलंका वगैरह तटरक्षक पोत, लैटिन अमेरिका के कुछ देश भारतीय रडार और हल्के हथियारों में रुचि दिखा रहे हैं। हम नेपाल, म्यांमार, भूटान के अलावा इंडोनेशिया, ब्राजील और कुछ यूरोपीय देशों को भी हथियार बेचने जा रहे हैं। ऐसे में गैर-नाटो देशों के अलावा कम से कम दो दर्जन नए नाटो ग्राहक मिलेंगे, तो हम करोड़ों-अरबों कमाएंगे।

इस तरह की प्रत्याशा भरे समाचारों की प्रचुरता ने नीदरलैंड्स के द हेग में हुई बैठक के दौरान नाटो देशों के नए बजट की मंजूरी को अपने देश के लिए भी एक महत्वपूर्ण घटना के तौर पर स्थापित कर दिया। सवाल उठता है कि क्या विश्लेषकों का आकलन तर्कसंगत और सटीक है, अथवा अति उत्साही और महज खुशफहमी भरा? बेशक, भारत अब बेहद उन्नत और सक्षम हथियार तथा सैन्य तकनीकि से संपन्न उपकरणों-उपस्करों का निर्माण करता है, विश्व बाजार में उसकी साख भी बन रही है। वह हथियारों को बेचना भी अवश्य चाहेगा। पर क्या वाकई यह एक इतना आसान और बड़ा अवसर है, जिसका मुख्य दोहनकर्ता भारत ही होगा? क्या यह मौका देश के हथियार बाजार को वैश्विक मंच दिलाएगा? क्या यह लाभ वाकई इतना बड़ा है जितना प्रचारित किया जा रहा है?

यह मुंगेरी लाल के हसीन सपने से कम नहीं

नाटो के कोष में 66% हिस्सेदारी निभाने वाले अमेरिका के हाथ खींचने की घुड़की से उसके कुछ देश अपना रक्षा व्यय जीडीपी के पाँच प्रतिशत तक ले जाने का प्रयास करेंगे। पोलैंड अपनी जीडीपी का 4% से ज्यादा, एस्टोनिया और अमेरिका साढ़े तीन प्रतिशत से अधिक, लातविया

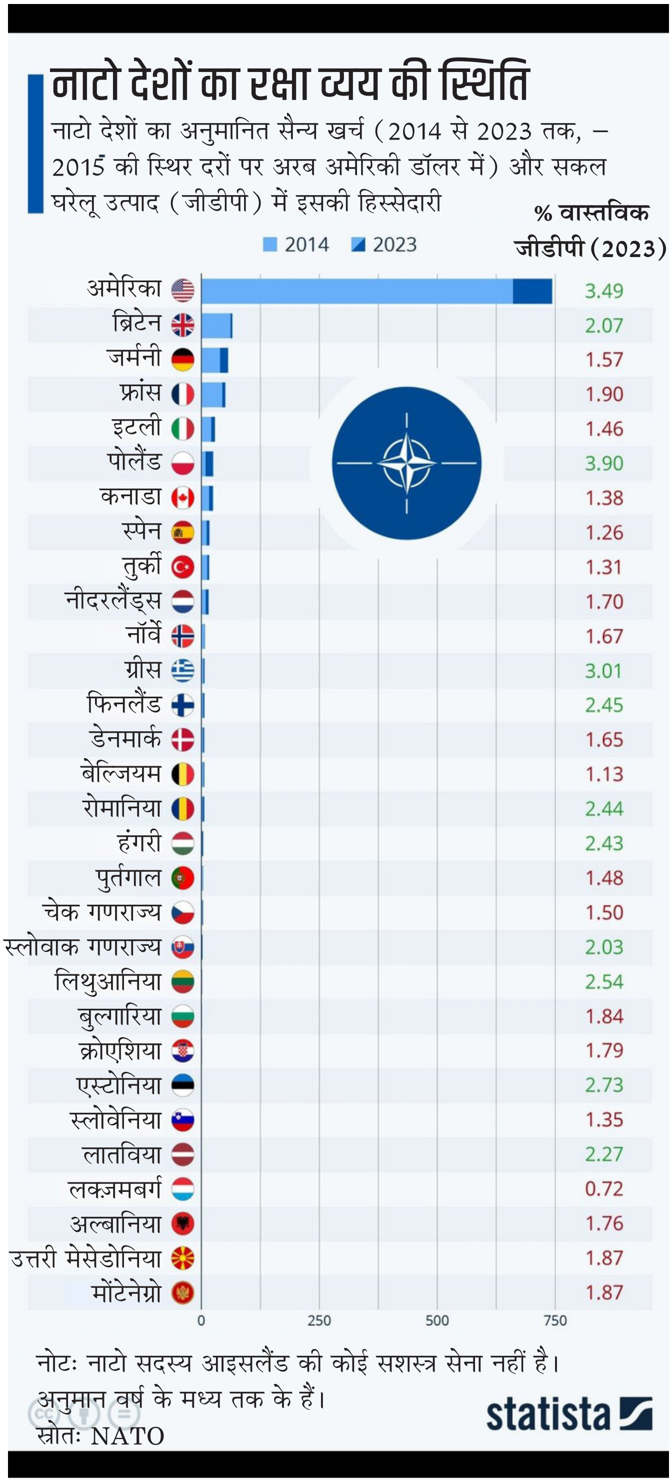

और ग्रीस जो तीन फीसदी तक खर्चते हैं, वे ऐसा कर सकेंगे। फिलहाल, इनमें ग्रीस के अलावा कोई दूसरा हमारा संभावित ग्राहक नहीं दिखता। ढाई प्रतिशत या उससे कम का आंकड़ा रखने वाले देशों के लिए यह काम आसान न होगा, जिसमें फिनलैंड, ब्रिटेन, रोमानिया, डेनमार्क इत्यादि हैं। और जो देश दो प्रतिशत या उससे भी नीचे यानी जो अपनी

जीडीपी का एक प्रतिशत से जरा ही ज्यादा रक्षा मद में व्यय करते हैं, उनके लिए यह असंभव होगा। तो ज्यादातर नाटो देश सैनिकों, हथियारों पर जीडीपी का साढ़े तीन प्रतिशत का रक्षा व्यय पूरा नहीं कर पाएंगे।

हद से हद सड़कों, पुलों, बंदरगाहों, हवाई क्षेत्रों, सैन्य वाहनों, साइबर सुरक्षा और ऊर्जा पाइपलाइनों की सुरक्षा सहित बुनियादी ढांचे को उन्नत करने की मद में जीडीपी का डेढ़ प्रतिशत का नियत हिस्सा वे गोलमाल से पूरा करेंगे। कुछ देशों की राजनीतिक स्थिति ऐसी है कि सत्ता में उनके साझीदार रक्षा को शिक्षा, स्वास्थ्य पर तरजीह देने के खिलाफ हैं।

नाटो देश अब सस्ते और भरोसेमंद वैकल्पिक हथियार स्रोत ढूंढ रहे हैं। सो, कुछ नाटो देशों से खरीदारी के प्रस्ताव मिलते भी हैं, तो उसका हमारे रक्षा व्यवसाय पर कितना प्रभाव पड़ेगा, यह इसी बात से समझा जा सकता है कि आज 85 से अधिक देशों को रक्षा उत्पाद निर्यात करने के बावजूद भारत वैश्विक रक्षा निर्यात बाजार में एक प्रतिशत से कम की हिस्सेदारी रखता है।

नाटो के सभी देश रक्षा पर स्वास्थ्य या शिक्षा से कम खर्चते हैं। अगर 5% रक्षा व्यय तय करते हैं, तो 21 देश जो अभी शिक्षा के मद में पाँच प्रतिशत से कम निवेश करते हैं, वे स्कूली शिक्षा को पीछे छोड़ सेना को अधिक आवंटित करेंगे। ऐसे में, सत्ता, गठबंधन, चुनावों में लोकप्रियता की राजनीति उन्हें रोकेगी, तो सामाजिक ताकतें भी। स्पेन जैसे देश जो भौगोलिक तौर पर रूस-चीन के खतरे से बहुत दूर हैं, वे इस ओर कान ही नहीं देंगे। सवा फीसदी से थोड़ा ज्यादा रक्षा व्यय वाला कनाडा राजनीतिक कारणों से आनाकानी करेगा। रक्षा व्यय को जीडीपी के पांच फीसदी तक पहुंचने के लिए तकरीबन दो दर्जन देशों को मौजूदा खर्चों की तुलना में हर बरस सैकड़ों अरब डॉलर ज्यादा खर्चने होंगे। तिस पर, नाटो सदस्यों को खुद तय करना होगा कि वे रक्षा व्यय आवंटन हेतु अतिरिक्त नकदी कहां से लाएं। सामाजिक उत्थान की बात और है, हथियार के लिए उधार मिलने से रहा।

ब्रह्मोस की मांग वैश्विक स्तर पर बढ़ रही है

नाटो के संपन्न और जीडीपी के तीन फीसद से ज्यादा रक्षा व्यय करने वालों के पसंदीदा हथियार विक्रेताओं में अभी भारत शामिल नहीं है। छोटे देश जिनका रक्षा बजट उनकी जीडीपी के तीन फीसद तक पहुंच भी जाए, तो यह राशि बेहद कम होगी। ऊपर से समूह के सदस्य देशों तथा अमेरिका और बाजार के दीगर बड़े खिलाड़ियों का भी दबाव होगा। नाटो देशों के हथियार और सैन्य सामग्री तथा उपकरणों के मुख्य आपूर्तिकर्ता अभी भी अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन ही हैं। बोइंग, एयरबस और लॉकहीड मार्टिन जैसी अमेरिकी कंपनियों ने नाटों देशों का हथियार बाजार पहले से ही कब्जाया हुआ है, वे इस अवसर को भुनाने के लिए और आक्रामक प्रयास करेंगी। इनके अलावा दक्षिण कोरिया इन देशों को उन्नत मिसाइल और नौसेना प्रणाली बेचने के करीब है, तो इजराइल और तुर्की इन्हें सस्ते ड्रोन्स, साइबर सुरक्षा, इंटेलिजेंस उपकरण तथा ब्राजील सस्ते में हल्के मिलेट्री विमान देने जा रहा है। ऐसे में, उनके सैन्य खरीद का कितना हिस्सा हमें मिलेगा कहना मुश्किल है। यह दावा कितना सही होगा कि यह अवसर भारतीय रक्षा निर्माताओं के लिए भारी निर्यात का रास्ता खोलेगा, वैश्विक रक्षा खरीद गतिशीलता को नई दिशा देगा? भारत नाटो देशों के लिए एक आकर्षक द्वितीयक सप्लायर बन जाएगा।

नाटो देश अब सस्ते और भरोसेमंद वैकल्पिक हथियार स्रोत ढूंढ रहे हैं। सो, कुछ नाटो देशों से खरीदारी के प्रस्ताव मिलते भी हैं, तो उसका हमारे रक्षा व्यवसाय पर कितना प्रभाव पड़ेगा, यह इसी बात से समझा जा सकता है कि आज 85 से अधिक देशों को रक्षा उत्पाद निर्यात करने के बावजूद भारत वैश्विक रक्षा निर्यात बाजार में एक प्रतिशत से कम की हिस्सेदारी रखता है।

विगत एक दशक में सरकार ने जो कोशिशें रक्षा के क्षेत्र में स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के नाम पर की हैं, उसके शानदार परिणाम अब दिखने लगे हैं और तय हो चुका है कि भारत रक्षा बाजार में भविष्य का बड़ा खिलाड़ी है। ब्रह्मोस मिसाइल, तेजस, अर्जुन टैंक, स्वदेशी रडार, आर्टिलरी गन, डोर्नियर-228 विमान, आकाश वायु रक्षा प्रणाली, पिनाका रॉकेट, जैसे तमाम निर्यात योग्य शानदार उत्पाद हैं। डेटा पैटर्न इंडिया, पारस डिफेंस एंड स्पेस टेक्नोलॉजीज, डीआरडीओ, भारत इलेक्ट्रॉनिक्स, भारत डायनेमिक्स, आइडियाफोर्ज टेक्नोलॉजी, एचएएल, टाटा एडवांस सिस्टम, जैसी कई कंपनियां अपने उत्पादों और डिलवरी के लिये वैश्विक स्तर पर जानी जा रही हैं। एमआरओ यानी मेंटीनेंस, रिपेयर, ओवरऑल सेक्टर में भी हम बेहतर हैं। यदि हम अपनी आकांक्षाओं को वास्तविकता के धरातल पर रखें, तो इस अवसर का लाभ हम टियर-2 सप्लायर के रूप में ले सकते हैं। सरकार का लक्ष्य है वित्त वर्ष 29 तक रक्षा निर्यात में 50,000 करोड़ रुपये हासिल करने का, उसे इसी तरह पूरा किया जा सकता है। देखना है कि इस आशावादिता का क्या हश्र होता है। •

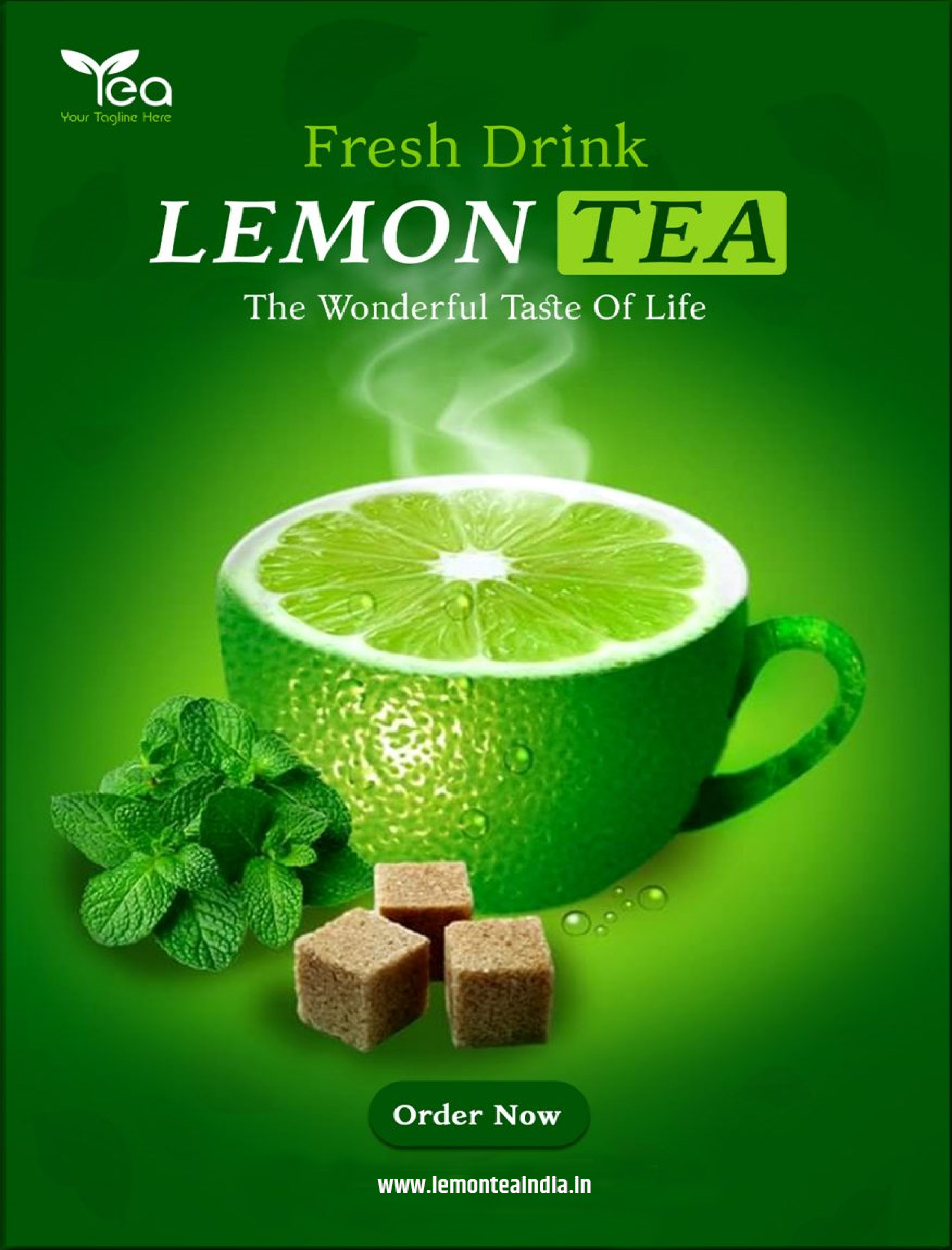
Tea
Your Tagline Here
Fresh Drink
LEMON TEA
The Wonderful Taste Of Life
Order Now
www.lemonteaIndia.in

मोदीयाना

• एक देश • एक नेता • एक वाणी

श्रीराजेश

क्या हिंदुस्तान की सियासत में 'मोदी' एक अजेय शक्ति बन चुके हैं? क्या लोकतांत्रिक मूल्यों की नींव खोखली हो चुकी है और सत्ता एक व्यक्ति केंद्रित हो गई है? 70 के दशक में आक्रोशित जनता ने पर्दे पर अमिताभ बच्चन में अपना नायक देखा, तो क्या आज़ादी के अमृतकाल में संघ की प्रयोगशाला से निकले मोदी उसी भूमिका में हैं? 'चायवाला' से 'विश्वगुरु' तक का सफ़र तय करने वाले मोदी की राजनीति, क्या सिर्फ़ भावनाओं की सवारी है या इसके पीछे कोई ठोस विचारधारा भी है? इन सवालों के साथ हम झांकते हैं उस 'मोदी युग' में, जहाँ विपक्ष बेदम है, संस्थाएं कमजोर हैं और सवाल पूछना गुनाह है। क्या ये अजेयता स्थायी है?

वह 1970-80 का दौर था। देश की आजादी के अरमान के अधूरेपन की वजह से जनता में गुस्सा भरता जा रहा था। भारत के नवनिर्माण के प्रण में लगे देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के बाद सत्ता स्थानांतरित होते हुए बेटी इंदिरा गांधी के हाथों में आई और इंदिरा ने देश पर आपातकाल थोप दिया। आक्रोशित जनता के मन में अब व्यवस्था के प्रति नाराजगी काफी बढ़ गई थी। जेपी के संपूर्ण क्रांति के आह्वान में वह नाराजगी तो दिख रही थी, लेकिन लोगों के मन के आक्रोश को रुपहले पर्दे पर एक नौजवान अपनी अदाकारी से प्रतिबिंबित कर रहा था। देखते ही देखते उस अदाकार ने सिल्वर स्क्रीन से निकल कर भारतीय जनमानस के दिल में अपनी जगह बना ली और सुपर स्टार अमिताभ बच्चन का अवतरण हो गया।

कुछ ऐसी ही परिस्थितियां पिछले दो दशक की राजनीति में भी देखी गईं। समाज के भीतर से एक चेहरे को गढ़ा जा रहा था। इस चेहरे को गढ़ने वाली जोड़ी सलीम जावेद की नहीं थी, बल्कि इसके पीछे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ था और जिस नायक को लोगों के दिलों में उतारना था - वह नरेन्द्र मोदी थे। इस नायक और सिल्वर स्क्रीन के नायक अमिताभ बच्चन में एक अंतर था। अमिताभ बच्चन को केवल अदाकारी करनी थी, लेकिन इस नायक अर्थात नरेंद्र मोदी को अदाकारी ही नहीं, बल्कि समाज में एक करिश्माई नेता की मौजूदगी, सभी सामाजिक समस्याओं का राजनीति समाधान प्रदाता की छवि और अपने विरोधियों के खिलाफ का एक वातावरण भी सृजित करना था। और साथ ही अपनी अदाकारी से यह संदेश भी देना था कि इस डरावने वातावरण से केवल वही छुटकारा दिला सकते हैं। इस पूरी पटकथा के पीछे संघ

परिवार नियोजित ढंग से अपनी भूमिका निभा रहा था। नरेंद्र मोदी के लिए लिखी गई भूमिका में यह साफ था कि उन्हें अपनी अदाकारी इस कदर दिखानी है कि लगे पूरी राज-व्यवस्था पंगु हो गई है और हर तंत्र को उबारने के लिए बतौर नायक वही एक विकल्प हैं।

इस नायक की छवि गढ़ने के लिए संघ परिवार ने हर स्तर पर प्रयास किया और खास कर युवा मतदाताओं के बीच एक बोल्ड नेता के रूप में उन्हें स्थापित करने के लिए तकनीक का जमकर उपयोग भी किया। वर्ष 2012 के बाद से संघ परिवार ने 2014 के आम चुनाव को ध्यान में रख कर राजनीतिक पटकथा लिखनी शुरू कर दी और उसके नायक के तौर पर नरेंद्र मोदी को पेश किया। देखते ही देखते यह नायक यूपीए-2 के कार्यकाल की सारी विफलताओं को अपने हक में सफलता की कुंजी

कांग्रेसी या क्षत्रपों में इतनी ताकत नहीं रह गयी कि सत्ता गंवाने के बाद सत्ता पाने के लिए ढंग से संघर्ष करते हुए दिखायी देने के अलावा, कुछ कर सकें। संवैधानिक संस्थाएं धीरे-धीरे नरेंद्र मोदी की अगुवाई वाली सरकार की केंद्रीकृत शासन व्यवस्था के जकड़न में जकड़ गयीं। हालात कैसे बदले इसका तब पता चला, जब सुप्रीम कोर्ट के चार न्यायाधीशों को अपनी बात कहने के लिए सड़क पर उतरना पड़ा। मीडिया राग दरबारी की भूमिका में चला गया।

बना चुका था और सवा सौ करोड़ भारतीयों की हताशा-निराशा के बीच के माहौल में वह उम्मीद की किरण बन कर उभर चुका था। पूरा देश 2014 के आम चुनाव में एकजुट होकर पूर्ण बहुमत वाली एक सरकार नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में बना डाली।

और यहीं से मोदी युग का आरंभ हुआ। बीजेपी के संघर्ष के पुराने नायक लाल कृष्ण आडवाणी अकेले अंधेरे में कैद कर दिये गये।।।। मुरली मनोहर जोशी खामोशी की तरंगों में खो गये। यशंवत सिन्हा सुनसान सड़क पर हंगामा खड़ा करने के मकसद को लगातार टटोल रहे थे। शत्रुघ्न सिन्हा की खलनायकी खुल कर सामने लाने के लिए मजबूर कर दिया गया। कांग्रेसी या क्षत्रपों में इतनी ताकत नहीं रह गयी कि सत्ता गंवाने के बाद सत्ता पाने के लिए ढंग से संघर्ष करते हुए दिखायी देने के अलावा, कुछ कर सकें। संवैधानिक संस्थाएं धीरे-धीरे नरेंद्र मोदी की अगुवाई वाली सरकार की केंद्रीकृत शासन व्यवस्था के जकड़न में जकड़ गयीं। हालात कैसे बदले इसका तब पता चला, जब सुप्रीम कोर्ट के चार न्यायाधीशों को अपनी बात कहने के लिए सड़क पर उतरना पड़ा। मीडिया राग दरबारी की भूमिका में चला गया। प्रधानमंत्री मोदी, जो स्वयं को प्रधानसेवक, देश का चौकीदार और देश ही उनका परिवार कहते हैं और महात्मा गांधी के अनुयायी बताते हैं, उन्होंने महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज को ग्राम सुराज का नाम तो दिया, लेकिन सत्ता के विकेंद्रीकरण के मंसूबे को सात तालों के भीतर बंद कर दिया। मोदी सत्ता के दौरान हालात ऐसे हो गये कि मंत्री और मंत्रालय दिखते तो जरूर थे, लेकिन सत्ता केंद्रीकृत हो कर पीएमओ तक सिमट कर रह गई। ऐसा होने के पीछे के कारणों को टटोलने की जरूरत आ पड़ी है।

देश ने 2019 के चुनाव में फिर से नरेंद्र मोदी को पहले के मुकाबले और अधिक मजबूती से सत्ता पर बिठाया। क्योंकि उनके समानांतर कोई अन्य फलक पर नहीं दिख रहा था। फिर 2024 के चुनाव में

मोदी सरकार की उपलब्धियां

पहला कार्यकाल (2014–2019): नींव का दशक

1. **जन धन योजना (2014):**
   50 करोड़ से अधिक बैंक खाते खोले गए। वित्तीय समावेशन का सबसे बड़ा अभियान।
2. **स्वच्छ भारत मिशन (2014):**
   10 करोड़ से अधिक शौचालय बनाए गए। खुले में शौच की दर में गिरावट।
3. **उज्ज्वला योजना (2016):**
   गरीब महिलाओं को मुफ्त LPG कनेक्शन — 9 करोड़ से अधिक लाभार्थी।
4. **मेक इन इंडिया (2014):**
   विनिर्माण और निवेश को बढ़ावा देने की पहल, हालांकि सीमित औद्योगिक परिवर्तन।
5. **जीएसटी (2017):**
   पूरे देश में एक समान कर प्रणाली लागू, ऐतिहासिक कर सुधार।
6. **आधार और डिजिटल इंडिया:**
   ई-गवर्नेंस, डिजिटल भुगतान और आधार लिंकिंग को आगे बढ़ाया।
7. **सर्जिकल स्ट्राइक (2016):**
   उरी हमले के बाद नियंत्रण रेखा के पार आतंकवादी ठिकानों पर हमला।
8. **बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ:**
   बालिका शिक्षा और सुरक्षा पर केंद्रित सामाजिक अभियान।
9. **सौभाग्य योजना:**
   ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली पहुंचाने की महत्वाकांक्षी पहल।

--

दूसरा कार्यकाल (2019–2024): निर्णायक बदलावों का काल

1. **अनुच्छेद 370 हटाना (अगस्त 2019):**
   जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा समाप्त, राज्य दो केंद्रशासित प्रदेशों में विभाजित।
2. **राम मंदिर निर्माण (2020–2024):**
   सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद भव्य राम मंदिर का निर्माण, 2024 में उद्घाटन।
3. **नागरिकता संशोधन अधिनियम:**
   पड़ोसी देशों के गैर-मुस्लिम शरणार्थियों को नागरिकता देने का कानून।
4. **तीन तलाक पर प्रतिबंध:**
   मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों की दिशा में बड़ा कदम।
5. **राष्ट्रीय शिक्षा नीति:**

मोदी के नेतृत्व में भाजपा अपना वह करिश्मा ना दोहरा सकी और बहुमत के आकड़े से नीचे लुढक कर 240 पर अटक गई लेकिन एनडीए के समर्थक दलों के साथ बहुमत की सरकार फिर बन गई।

इस तीसरे कार्यकाल में अब आवश्यक है कि यह आकलन किया जाए कि लोकतांत्रिक तरीकों से, चुनावों के जरिये भाजपा या सीधे शब्दों में कहें तो मोदी को हराना क्या अब असंभव सा हो गया है? विपक्ष में राहुल गांधी को छोड़ कर कोई भी राष्ट्रीय स्तर पर पहचान वाला नेता नहीं है, तिस पर राहुल राष्ट्रीय स्तर पर कुछ उल्लेखनीय कर गुजरें संभव हो भी जाए तो कांग्रेस ऐसा करती नहीं दिखती। सो विपक्ष और उसके प्रमुख चेहरे जो प्रधानमंत्री बन सकें नदारद हैं। लेकिन मोदी के बाद कौन? यह सवाल किंचित समय पूर्व कही जा सकती हैं पर कठिन कार्य समय पूर्व आरंभ करना ही श्रेयस्कर होता है। इस आवरण कथा के कई शेड है, जिसमें हम अजेय मोदी, अनवरत मोदी की चर्चा तो करेंगे ही। साथ ही वर्तमान की देश की राजनीति के बरअक्श भविष्य की राजनीति का आकलन और वैश्विक स्तर पर मोदी के नेतृत्व में भारत विश्वगुरु की अपनी संकल्पना की ओर किस गति से बढ़ रहा है, उसका भी आकलन करेंगे।

अभी हाल ही में आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत ने 75 वर्ष की

उम्र के बाद लोगों को शाल ओढ लेने की सलाह दी थी। तब इस बयान को नरेंद्र मोदी के अगले महीने अर्थात 17 सितंबर, 2025 को 75 वर्ष की आयु पूरी करने के बाद राजनीति से सन्यास लेने के दबाव के रूप में देखा गया, हालांकि भागवत ने अपने बयान पर स्पष्टीकरण दे दिया था कि उनका यह बयान मोदी के संबंध में जो कयास लगाये जा रहे है, उससे जोड़ कर न देखा जाए। हालांकि राजनीति में कयासो, संकेतों और कहीं पे निगाहें, कहीं पे निशाना की तर्ज पर बयान दिये या कृत्य किये जाते हैं और उसका सौ फीसदी निहितार्थ राजनीति ही होता है। अभी संसद के मानसून सत्र के पहले ही दिन जिस नाटकीय ढंग से उपराष्ट्रपति जगदीप धनखड़ ने अपने पद से इस्तीफा दिया, उसे भी उसी चश्मे से किंचित देखा जा रहा है क्योंकि उन्होंने भी इसी वर्ष 75 वर्ष की आयु पूरी की है और उन्होंने इस्तीफे का हवाला भी स्वास्थ्य कारणों का दिया है। खैर, इन सबके बाद यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि यह 75 वर्ष वाला मामलों सिर्फ राजनीतिक सुर्खियों और बयानों तक रह गया है लेकिन यह किंचित समय पूर्व कही जाने वाली बात ज़रूर है, पर कठिन कार्य समय पूर्व आरंभ करना ही श्रेयस्कर होता है। नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा तब तक चुनाव जीतती रहेगी और केंद्र समेत अधिकांश राज्यों में सरकार बनाती रहेगी जब तक वह स्वयं ऐसा चाहें। दरअसल आज

मोदी सरकार की विफलताएं

पहला कार्यकाल (2014–2019)

1. नोटबंदी (2016):
अचानक की गई नोटबंदी से अर्थव्यवस्था को भारी झटका लगा, लाखों छोटे व्यापार बंद हुए, बेरोजगारी बढ़ी और अपेक्षित काले धन की वापसी नहीं हो पाई।

2. रोज़गार संकट:
वादे के विपरीत, युवाओं को प्रतिवर्ष 2 करोड़ नौकरियाँ नहीं मिल सकीं; 45 वर्षों में सबसे अधिक बेरोजगारी दर 2017–18 में दर्ज हुई।

3. जीएसटी लागू करने में जल्दबाज़ी:
बिना पूरी तैयारी के लागू की गई जीएसटी ने छोटे कारोबारियों को कठिनाई में डाला और कर प्रणाली को जटिल बना दिया।

4. कृषि संकट:
किसानों की आत्महत्या, उपज के सही दाम न मिलना, और बार-बार आंदोलन मोदी सरकार की नीतियों पर प्रश्नचिन्ह बने।

5. संस्थाओं का कमजोर होना:
सीबीआई, रिज़र्व बैंक, चुनाव आयोग जैसी संस्थाओं में हस्तक्षेप और स्वतंत्रता की कमी के आरोप लगे।

--

दूसरा कार्यकाल (2019–2024)

1. कोरोना महामारी का कुप्रबंधन (2020–21):
ऑक्सीजन की कमी, स्वास्थ्य ढाँचे की विफलता, लाखों मौतें और प्रवासी मजदूरों की दुर्दशा ने सरकार की तैयारी पर सवाल उठाए।

2. तीन कृषि कानून (2020):
बिना परामर्श के लाए गए कृषि कानूनों के खिलाफ ऐतिहासिक किसान आंदोलन हुआ; अंततः सरकार को उन्हें वापस लेना पड़ा।

3. चीन के साथ सीमा विवाद (2020):
गलवान घाटी संघर्ष में 20 भारतीय सैनिकों की शहादत के बाद भी चीन को स्पष्ट जवाब न देना आलोचना का विषय बना।

4. रोज़गार की गिरावट:
श्रम बल भागीदारी दर ऐतिहासिक रूप से कम रही; निजीकरण के चलते स्थायी नौकरियों में भारी कटौती हुई।

5. महँगाई और आर्थिक असमानता:
पेट्रोल, गैस, खाद्य वस्तुओं की कीमतें लगातार बढ़ीं; अरबपतियों की संपत्ति बढ़ती रही, जबकि आम आदमी की आय घटती रही।

6. संविधानिक मूल्यों पर हमले के आरोप:

34 साल बाद नई शिक्षा नीति लागू — लचीलापन, मातृभाषा, स्किल-बेस्ड लर्निंग पर ज़ोर।

6. **PM-KISAN योजना:**
किसानों को सालाना 6,000 सीधे बैंक खातों में ट्रांसफर।

7. **COVID-19 प्रबंधन:**
220 करोड़ से अधिक वैक्सीन खुराकें दी गईं, दुनिया का सबसे बड़ा टीकाकरण अभियान।

8. **वंदे भारत ट्रेनें:**
सेमी-हाईस्पीड ट्रेनों का शुभारंभ, आधुनिक रेलयात्रा का आरंभ।

9. **राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन और गति शक्ति योजना:**
बुनियादी ढांचे में निवेश बढ़ाने हेतु समेकित योजना।

10. **मीडिया और डिजिटल कानून:**
आईटी नियमों में संशोधन, सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर निगरानी बढ़ी।

--

तीसरा कार्यकाल (2024–वर्तमान): प्रारंभिक चरण

1. **NDA सरकार का गठन (2024):**
पूर्ण बहुमत न मिलने के बाद सहयोगी दलों के साथ सरकार का गठन।

2. **सेमीकंडक्टर, चिप निर्माण पर ज़ोर:**
आत्मनिर्भर भारत के तहत तकनीकी उत्पादन में निवेश।

3. **'ऑपरेशन सिंदूर':**
पहलगाम आतंकी हमले के जवाब में पाकिस्तान स्थित आंतंकी ठिकानों पर हमला, फिर एक आंशिक युद्ध।

4. **चंद्रयान-3 और गगनयान:**
ISRO के माध्यम से भारत का अंतरिक्ष शक्ति के रूप में उभार।

5. **नए संसद भवन का उपयोग:**
केंद्र की शक्ति और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का प्रतीक। •

की भारतीय राजनीति में, लोकतांत्रिक तरीके से—चुनावों के ज़रिए—भाजपा को हराना लगभग असंभव हो चला है। विपक्ष में राहुल गांधी को छोड़कर कोई ऐसा चेहरा नहीं है जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रधानमंत्री पद का वास्तविक दावेदार बन सके। और राहुल भी यदि कुछ उल्लेखनीय कर गुजरने की क्षमता रखते हों, तो कांग्रेस की निष्क्रियता उन्हें वह अवसर प्रदान करती प्रतीत नहीं होती।

तो सवाल सिर्फ यह नहीं कि भाजपा को कौन हराएगा—बल्कि यह भी है कि क्या उसे हराया भी जा सकता है? क्या चुनाव आयोग, मीडिया, न्यायपालिका, और तमाम संवैधानिक संस्थाओं पर भाजपा की पकड़ इतनी मज़बूत हो चुकी है कि जनादेश अब एक स्वाभाविक लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति नहीं बल्कि एक 'प्रायोजित और प्रबंधित' इवेंट बन चुका है?

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की राजनीति किसी स्थायी आदर्श पर नहीं टिकी, बल्कि यह सतत बदलती हुई भावनाओं की सवारी करती है—कभी 'चाय वाला', कभी 'चौकीदार', कभी 'विश्वगुरु', तो कभी 'विकास पुरुष'। और इस परिवर्तनशील व्यक्तित्व के पीछे जो सबसे सधा हुआ तंत्र खड़ा है, वह है उनकी विदेशी नीति। सबसे बड़ी बात यह है कि राजनीति के इतर इनका व्यक्तित्व एक हिंदू राष्ट्रवादी नेता की है, जिसे बड़ी शिद्दत के साथ आरएसएस ने अपनी प्रयोगशाला में गढ़ा है, कई वरिष्ठ राजनीति विश्लेषकों की माने तो संघ के वैचारिकी में पका कर हेडगेवार और गुरु गोलवलकर से ख्वाबों के आदर्श राजनीति चेहरा नरेंद्र मोदी है और शायद यह संघ परिवार की वैचारिक यात्रा के 100 नहीं तो कम से कम 90 वर्षों की साधना का प्रतिफल है। उल्लेखनीय है इसी वर्ष संघ अपनी स्थापना का 100 वां वर्ष अर्थात शताब्दी वर्ष मनायेगा।

मोदी सरकार की विदेश नीति का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि उसने कूटनीति को टेलीविज़न-फ्रेंडली बना दिया। अब विदेश नीति, बंद दरवाजों के पीछे चलने वाली संवाद प्रक्रिया नहीं, बल्कि लाइव-स्ट्रीमिंग योग्य इवेंट बन चुकी है। मोदी का हर विदेशी दौरा जैसे किसी नायक का विजय अभियान होता है— साबरमती रिवरफ्रंट पर हाथ में हाथ डाले शी जिनपिंग के साथ टहलते नरेंद्र मोदी, झूले पर झूला झूलते बराक ओबामा, ट्रंप के साथ मोटेरा में नमस्ते ट्रंप, अबू धाबी में मंदिर उद्घाटन—सब कुछ इतने भव्य तरीके से पेश किया गया कि देश में बैठा आम नागरिक विदेश नीति को भी 'इवेंट' की तरह देखने लगा।

लेकिन इस चमक-दमक के पीछे क्या सच में भारत का कूटनीतिक कद बढ़ा? चीन के साथ सीमा विवाद से लेकर पाकिस्तान से संवादहीनता, रूस-यूक्रेन युद्ध में भारत की अस्पष्टता, या खाड़ी देशों के साथ रिश्तों की अस्थिरता—सभी मोर्चों पर मोदी सरकार की विदेश नीति को गंभीर प्रश्नों का सामना करना पड़ा है। ब्रिक्स, जी20, या क्वाड में भारत की भागीदारी तो रही है, लेकिन क्या इन मंचों पर भारत की बात निर्णायक रूप से सुनी गई? या फिर हम सिर्फ मंच की शोभा बनकर रह गए?

मोदी सरकार की विदेश नीति एक खास किस्म की आत्म-मुग्धता से ग्रस्त प्रतीत होती है। यह एकतरफा संवाद का रूप ले चुकी है जिसमें यह मान लिया गया है कि जो भारत कह रहा है, वही अंतिम है। यूक्रेन युद्ध पर भारत की 'मौन नीति' इसका ज्वलंत उदाहरण है। पश्चिम से अच्छे संबंध बनाए रखने के लिए रूस को न खुले तौर पर समर्थन मिला, न विरोध—और परिणामस्वरूप भारत को दोनों ओर से संदेह की दृष्टि से देखा गया।

चीन ने भारत की कूटनीतिक छवि पर सबसे अधिक आघात किया। डोकलाम से लेकर गलवान तक, और फिर अरुणाचल के क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे का विस्तार—हर बार चीन ने भारत को एक रणनीतिक दबाव में डाला, और मोदी सरकार या तो चुप रही या बेहद सतर्क भाषा में प्रतिक्रिया देती रही। प्रधानमंत्री मोदी का यह बयान कि 'न कोई घुसा है, न कोई घुसा हुआ है' इतिहास के पन्नों में एक कूटनीतिक आत्मवंचना के उदाहरण के रूप में दर्ज हो चुका है।

'नेबरहुड फर्स्ट' की नीति के अंतर्गत जो प्रयास हुए, वे अधिकतर दिखावे तक सीमित रहे। श्रीलंका, नेपाल, बांग्लादेश जैसे देशों के साथ भारत के संबंध या तो तनावपूर्ण रहे या अविश्वासपूर्ण। नेपाल के संविधान निर्माण के समय भारत की दखलंदाज़ी, श्रीलंका में तमिल मुद्दे पर चुप्पी, और बांग्लादेश के साथ एनआरसी जैसे मुद्दों पर नकारात्मक प्रभाव—इन सबने यह दिखाया कि 'नेबरहुड फर्स्ट' केवल उद्घोषणा थी, नीति नहीं।

नरेंद्र मोदी की विदेश नीति संस्थानों की भागीदारी से अधिक एक व्यक्ति केंद्रित हो चुकी है। विदेश मंत्रालय की भूमिका सीमित कर दी गई है और अधिकांश निर्णय सीधे पीएमओ से होते हैं। भारतीय विदेश सेवा जैसी विशेषज्ञ संस्था एक 'लॉजिस्टिक टीम' के रूप में सीमित हो चुकी है, जिसका काम दौरे के लिए मंच सजाना और झंडे सजाना रह गया है।

जब हम मोदी के विकल्प की बात करते हैं, तो यह समझना होगा कि क्या मोदी का विकल्प सिर्फ व्यक्ति के तौर पर देखा जाए, या शैली, संरचना और विचारधारा के रूप में भी? इस बात में कोई दो राय नहीं कि नरेंद्र मोदी के बाद भाजपा में कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी नहीं दिखता। अमित शाह, योगी आदित्यनाथ, जय शाह, खट्टर, नड्डा जैसे नाम हवा में हैं, पर उनमें से कोई भी वह सर्वग्राह्यता नहीं पा सका है जो मोदी को मिली।

और शायद यही मोदी की सबसे बड़ी ताकत भी है—वह अपने भीतर किसी भी उत्तराधिकारी की संभावना को पूर्णतः शून्य कर देते हैं।

पर क्या यह अजेयता स्थायी है? नहीं। इतिहास सिखाता है कि हर अजेय नेतृत्व के भीतर विघटन का बीज होता है। मोदी 75 के होंगे। भले दो कार्यकाल और रहें, पर उसके बाद पद छोड़ना तय है—स्वेच्छा से या विवशता से। तब क्या भाजपा अपने भीतर से किसी को सामने लाएगी या कोई 'मोदी का मुखौटा' ही पेश किया जाएगा जो उन्हीं की तरह बोले, मुस्कराए, और कैमरे की ओर नज़र डाल कर वही कहे जो 'मंत्रालय' नहीं बल्कि 'नायक' चाहता है?

एक समय था जब भाजपा का नेतृत्व संघ के आशीर्वाद से तय होता था। पर अब संघ का राजनीतिक दबदबा शून्य हो चुका है। वह सिर्फ प्रतीकात्मक बयानों तक सीमित है। उसके पास न नैतिक बल बचा है, न संगठनात्मक पकड़। ऐसे में मोदी के उत्तराधिकारी के चयन में संघ की निर्णायक भूमिका होगी—ऐसा मानना आज की स्थिति में हास्यास्पद लगता है।

यदि यह चयन मोदी की शैली में होगा, तो एक सुबह पार्टी को पता चलेगा कि उनका नया नेता खट्टर या नरोत्तम मिश्रा है। लेकिन यदि यह एक सुविचारित प्रक्रिया से होगा, तो कुछ संभावित नाम उभरेंगे—जैसे योगी आदित्यनाथ, अमित शाह, धर्मेंद्र प्रधान, मनोज सिन्हा या किसी और उभरते चेहरे को तराशा जाएगा।

पर सवाल यह है कि पार्टी किसे पसंद करेगी—जो फंड जुटाने में तेज हो, जो संगठन के प्रति आज्ञाकारी हो, जो जनता को भावनात्मक रूप से बाँध सके, या जो सिर्फ मोदी के प्रति निष्ठावान हो? इस समय पार्टी के पास 'मोदी के बाद मोदी, उसके बाद कौन?' का उत्तर शायद नहीं है, पर यह तलाश अब ज़रूरी है।

आज भाजपा एक पार्टी नहीं, एक 'सिस्टम' बन चुकी है—जिसका एक चेहरा है, एक आवाज़ है, और एक भय भी। यह भय किसी बाहरी शक्ति का नहीं, बल्कि आंतरिक मौन का है। पार्टी में कोई दूसरा आवाज़ उठाने का साहस नहीं करता। और जब ऐसा होता है, तब 'लोकतंत्र' केवल चुनावी मशीनरी में सीमित रह जाता है, और देश एक लंबी राजनीतिक थकान में प्रवेश करता है।

राजनीति में कोई स्थिति स्थायी नहीं होती। विकल्पों की गैरमौजूदगी विकल्प नहीं है। राजनीतिक चेतना हमेशा विकल्प गढ़ती है। विपक्ष की असफलता स्थायी नहीं है—यदि जनता थकेगी, टूटेगी और सत्ता के एकछत्र स्वरूप से ऊबेगी, तो विकल्प पैदा होंगे। पर यह तभी होगा जब जनता सूचना की भीड़ में सच और प्रचार का फर्क समझ सके।

मोदी सरकार की विदेश नीति, आंतरिक शासन शैली, और उत्तराधिकार की तैयारी को लेकर बहुत से सवाल हैं—और इनका उत्तर भी सत्ता के भीतर से कम और जनता के भीतर से ज्यादा निकलना है। यदि एक राष्ट्र अपने लोकतंत्र की रक्षा करना चाहता है, तो उसे व्यक्तिवाद से बाहर निकल कर संस्थाओं और प्रक्रियाओं पर भरोसा करना होगा। वरना सवाल फिर यही रह जाएगाः 'क्या हम नायक चुन रहे हैं, या केवल नया मुखौटा? •

सीएए-एनआरसी विवाद, जम्मू-कश्मीर का अनुच्छेद 370 हटाना और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने की आलोचना हुई।

--

तीसरा कार्यकाल (2024–वर्तमान)

1.एनडीए में सहयोगी दलों पर निर्भरता :
पूर्ण बहुमत खोने के बाद सरकार को गठबंधन सहयोगियों के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ा है, जिससे निर्णय क्षमता सीमित हो रही है।

2.बेरोज़गारी और परीक्षा घोटाले :
पेपर लीक, भर्ती प्रक्रिया में देरी और युवाओं में बढ़ती निराशा – प्रमुख मुद्दे बनकर उभरे हैं।

3. जनविरोधी नीतियों का विरोध :
नई शिक्षा नीति, निजीकरण, और ऑनलाइन निगरानी जैसे मुद्दों पर छात्रों और नागरिक संगठनों का विरोध जारी है।

4. लोकतंत्र और मीडिया की गिरती रैंकिंग :
अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रेस स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक सूचकांक में भारत की रैंक में गिरावट आई है। •

मोदी मॉडल

पड़ोसी दूर, सत्ता पास

तीसरा कार्यकाल: विकास का दावा, संवाद का अभाव, और लोकतंत्र की थकान

2014 में सत्ता में आए मोदी ने भारत को वैश्विक शक्ति बनाने का वादा किया। उनके 11 वर्षों के शासनकाल में अर्थव्यवस्था में वृद्धि, डिजिटलीकरण और बुनियादी ढांचे का विकास हुआ। फिर भी, भारत बेरोजगारी, असमानता और पर्यावरण संबंधी चुनौतियों से जूझ रहा है। विदेश नीति में 'बहु-संरेखण' की रणनीति ने सफलता दिलाई, पर पड़ोसी देशों के साथ संबंध चुनौतीपूर्ण बने हुए हैं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देश को ऊपर से नीचे तक बदलने का वादा किया था। लेकिन उनके पहले कार्यकाल के अंत में उनके रिकॉर्ड को कठोरता से आंका गया। द इकोनॉमिस्ट के अनुसार, 2019 में वे अपनी कई सुधारों में विफल रहे। पांच और साल बीते और हिंदू राष्ट्रवादी मोदी, जो अब तीसरे कार्यकाल के लिए फिर से निर्वाचित हो चुके हैं, अब 2030 तक भारत को दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और 2047 तक - भारत की स्वतंत्रता की शताब्दी - एक विकसित देश बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। सत्ता में 11 साल बाद, उनका रिकॉर्ड एक अर्थव्यवस्था को अभी भी निर्माणाधीन और एक नाजुक लोकतंत्र को दर्शाता है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार, 2022 तक भारत ब्रिटेन को पीछे छोड़ते हुए दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति बन गया था। 2025 में भारत चौथे स्थान पर पहुंच चुका है, और अब विश्व बैंक, आईएमएफ और एस एंड पी जैसे संस्थानों का अनुमान है कि 2027 तक भारत तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। वित्त वर्ष 2023–24 में भारत की वास्तविक जीडीपी वृद्धि दर 7.8% रही। यह वृद्धि मुख्यतः सार्वजनिक निवेश, सेवा क्षेत्र, बुनियादी ढांचा, और पेट्रोलियम-खनन गतिविधियों से संचालित है।

हालांकि, यह तेज़ विकास दर हर साल आने वाले लगभग 1

करोड़ नए श्रम बल के लिए पर्याप्त रोजगार नहीं सृजित कर पा रही है। एक अविकसित औद्योगिक आधार के कारण, भारत गंभीर रोजगार संकट का सामना कर रहा है, विशेषकर युवाओं में — 2024 तक 42% युवा स्नातक बेरोजगार हैं।

प्रति व्यक्ति जीडीपी आज भी भारत की असमानता को उजागर करती है। लगभग $2,730 (2.3 लाख) प्रति वर्ष, यह आंकड़ा भारत को विश्व रैंकिंग में लगभग 127वें स्थान पर रखता है। मोदी के अधिकतर आर्थिक सुधार — डिजिटल इंडिया, कर सुधार, जीएसटी — पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के नीतिगत ढांचे से प्रेरित रहे हैं। हालांकि मोदी ने उन्हें लागू काफी निर्णायक और कभी-कभी कठोर तरीकों से किया, जैसे 2017 में जीएसटी लागू करना, जो 2000 के दशक में कल्पित हुआ था और जिसे पूर्ण रूप लेने में 17 साल लग गए।

बुनियादी ढांचे और डिजिटल भुगतान का विस्तार

डिजिटलीकरण संभवतः मोदी शासन की सबसे प्रमुख उपलब्धि है। यूपीआई (यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस) के माध्यम से, 2023 में भारत ने 100 बिलियन से अधिक लेन-देन दर्ज किए, जिनका कुल मूल्य 180 लाख करोड़ (2,000 बिलियन से अधिक) रहा। भारत अब दुनिया का सबसे बड़ा डिजिटल भुगतान बाजार बन चुका है।

इसी तरह, बुनियादी ढांचे का विकास भी मोदी की विकास रणनीति की रीढ़ रहा है। सड़कों, पुलों, जल परियोजनाओं और सौर ऊर्जा संयंत्रों के निर्माण ने सेवा क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया है। 2014 में भारत में 74 परिचालित हवाई अड्डे थे, जो अब बढ़कर 148 से अधिक हो चुके हैं। तेज़ और आधुनिक वंदे भारत ट्रेनों का जाल भी शुरू हो चुका है, हालांकि सामान्य ट्रेनें अब भी भीड़भरी और सुस्त हैं।

परंतु इस विकास की कीमत भी हैः आईएमएफ के अनुसार, भारत का सार्वजनिक ऋण अब जीडीपी का 81.9% है (2024)। दूसरी ओर, नई दिल्ली जैसे महानगरों में अब भी पीने के पानी की गंभीर कमी है। कचरा प्रबंधन अब भी अराजक है और बिजली ग्रिड मांग के अनुसार आपूर्ति नहीं कर पाते।

क्रोनी कैपिटलिज्म और आर्थिक असमानता

आज के भारत में क्रोनी कैपिटलिज्म दो नामों से जुड़ गया हैः गौतम अडानी और मुकेश अंबानी। एक कारोबारी साम्राज्य के उत्तराधिकारी और दूसरा स्व-निर्मित अरबपति, दोनों ने मोदी युग में अभूतपूर्व आर्थिक शक्ति अर्जित की है। वे अकेले नहीं हैं— टाटा, बिड़ला, और जेएसडब्ल्यू जैसे औद्योगिक समूह भी तेज़ी से ताकतवर बने हैं।

> **यह तेज विकास दर हर साल आने वाले लगभग 1 करोड़ नए श्रम बल के लिए पर्याप्त रोजगार नहीं सृजित कर पा रही है। एक अविकसित औद्योगिक आधार के कारण, भारत गंभीर रोजगार संकट का सामना कर रहा है, विशेषकर युवाओं में — 2024 तक 42% युवा स्नातक बेरोजगार हैं।**

2024 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत के 20 सबसे बड़े कॉरपोरेट समूह अब देश के कॉरपोरेट मुनाफे का 81% से अधिक हिस्सा उत्पन्न करते हैं, जो 2014 की तुलना में लगभग दोगुना है।

पर्यावरण, इस आर्थिक चढ़ाई का सबसे बड़ा 'अदृश्य नुकसान' रहा है। 2070 तक नेट-ज़ीरो कार्बन लक्ष्य तय किया गया है, लेकिन वायु गुणवत्ता और तापमान की दृष्टि से भारत पहले ही 'जलवायु जोखिम क्षेत्र' में प्रवेश कर चुका है।

भारत की वैश्विक छवि और राजनयिक दुविधाएं

मोदी युग में भारत ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज की है। चंद्रयान-3 की सफलता, जी20 की मेज़बानी, और क्वाड तथा ब्रिक्स में भारत की भागीदारी — यह दर्शाते हैं कि भारत अब 'गिने जाने लायक शक्ति' बन चुका है।

हालांकि, विदेश नीति के दो काले धब्बे हैं:

हिमालयी सीमाओं पर चीन की लगातार घुसपैठ (डोकलाम, गलवान और तवांग), जिसमें भारत की चुप्पी आलोचना का कारण बनी।

और जून 2023 में कनाडा में एक सिख कार्यकर्ता की हत्या, जिसके पीछे भारतीय खुफिया एजेंसियों पर संदेह जताया गया। अमेरिका ने भी इस मामले में चिंता व्यक्त की है।

हिंदूकरण और लोकतंत्र का क्षरण

यदि मोदी युग को एक प्रतीक में समेटा जाए, तो वह होगाः केसरिया रंग — हिंदू पहचान का प्रतीक और बीजेपी की वैचारिक

छाया। मोदी के 11 वर्षों में, भारत का धर्मनिरपेक्ष चरित्र क्षीण हुआ है और मुस्लिमों की स्थिति निचले दर्जे की नागरिकता जैसी हो चुकी है। अयोध्या में राम मंदिर, जिसे 2024 में भव्यता से उद्घाटित किया गया, भारत के धार्मिक पुनर्गठन का स्पष्ट प्रतीक बन गया है।

लोकतंत्र, यद्यपि नाम मात्र का बचा है। चुनाव तो होते हैं, पर मीडिया, न्यायपालिका, चुनाव आयोग और विरोधी दलों पर नियंत्रण अब आम बात हो गई है।

व्यक्तित्व पूजा और विचारहीनता

भारत की राष्ट्रीय राजनीति अब विचार नहीं, व्यक्तित्व आधारित बन गई है। जैसे द टेलीग्राफ में इतिहासकार रामचंद्र गुहा लिखते हैं- 'पिछले एक दशक में, पूरी पार्टी मशीनरी — और सरकारी संस्थानों का बड़ा हिस्सा — मोदी को एक महान, अलौकिक और अर्ध-दैवीय पुरुष के रूप में गढ़ने में व्यस्त रहा है। उनसे सवाल नहीं पूछे जा सकते, उन्हें केवल पूजा जाना चाहिए।'

विदेश नीतिः बहु-संरेखण की रणनीति

मोदी युग की विदेश नीति को 'बहु-संरेखण' की रणनीति के तहत संचालित किया गया है, जिसमें भारत ने रूस के साथ पारंपरिक संबंध, पश्चिमी साझेदारों के साथ रणनीतिक गठबंधन, और एशियाई पड़ोसियों के साथ भू-राजनीतिक संतुलन साधने की कोशिश की है। इस नीति के कुछ पहलू सफल रहे, लेकिन दक्षिण एशिया के पड़ोसी देशों के साथ रिश्ते लगातार चुनौतीपूर्ण बने रहे हैं।

बांग्लादेशः सामरिक सहयोग, लेकिन भरोसे की दरारें

मोदी सरकार के शुरुआती वर्षों में भारत-बांग्लादेश संबंधों में महत्वपूर्ण सुधार हुआ। भूमि सीमा समझौता को लागू करना एक ऐतिहासिक उपलब्धि था। दोनों देशों ने सुरक्षा, ऊर्जा और व्यापार के क्षेत्र में भागीदारी बढ़ाई।

हालांकि, एनआरसी और सीएए जैसे कदमों ने ढाका की चिंताओं को बढ़ाया। बांग्लादेश को आशंका है कि भारत में रहने वाले बंगाली मुस्लिमों को नागरिकता से वंचित कर, उनके देश की ओर धकेला जा सकता है। शेख हसीना सरकार, सार्वजनिक रूप से भारत का समर्थन करती रही है, लेकिन अब सामाजिक स्तर पर असंतोष बढ़ा है।

नेपालः हिंदुत्व और संप्रभुता के बीच तनाव

नेपाल के साथ रिश्ते 2015 में भारत-नेपाल सीमा नाकेबंदी के

बाद से तनावपूर्ण बने रहे। मोदी सरकार द्वारा नेपाल के संविधान में मधेसी समुदाय के प्रति भेदभाव की आलोचना और नाकेबंदी ने एंटी-इंडिया भावनाएं भड़काईं।

नेपाल ने इसके जवाब में चीन से करीबी बढ़ाई। कालापानी और लिपुलेख जैसे विवादित क्षेत्रों को नेपाल ने अपने नक्शे में शामिल किया, जिसे भारत ने खारिज किया। मोदी की 'राम सेतु डिप्लोमेसी' (जनकपुर और अयोध्या कनेक्शन) सांस्कृतिक सद्भाव की कोशिश रही, लेकिन राजनीतिक अविश्वास बना हुआ है।

भूटानः स्थिर लेकिन असंतुलन के संकेत

भूटान, भारत का सबसे करीबी पड़ोसी रहा है, और डोकलाम विवाद (2017) में भारत ने सीधे सैन्य हस्तक्षेप कर चीन को रोकने की कोशिश की। इससे भूटान को तत्काल सुरक्षा तो मिली, लेकिन भारत की सैन्य उपस्थिति और निर्णयों में दखल ने वहां के कुछ वर्गों में असहजता बढ़ाई है।

भूटान अब चीन से संवाद शुरू कर चुका है, और यदि वह राजनयिक संबंध स्थापित करता है, तो यह भारत के लिए एक रणनीतिक झटका होगा।

मालदीव: बदलते रिश्ते

मोदी के पहले कार्यकाल में मालदीव में चीन समर्थक अब्दुल्ला यामीन की सरकार के कारण रिश्ते बिगड़े। लेकिन 2018 में इब्राहिम सोलिह के सत्ता में आने के बाद भारत-मालदीव संबंध फिर सुधरे। भारत ने ढेरों विकास परियोजनाएं शुरू कीं।

हालांकि 2023 में यामीन समर्थक मोहम्मद मुज्जू के सत्ता में आने और 'India Out' अभियान को बढ़ावा देने से फिर रिश्तों में तनाव बढ़ गया है। भारत को सैन्य उपस्थिति हटानी पड़ी, जो कूटनीतिक हार मानी गई लेकिन फिर मोदी सरकार की कुटनीति यहां काम आई, रिश्ते पनः पूर्वत होने लगे और जुलाई के अंत में जब नरेंद्र मोदी मालदीव की यात्रा पर गये तो उन्हें वहां भी शिखर सम्मान से सम्मानित किया गया।

श्रीलंका: आर्थिक संकट में तारणहार भारत

2022 के श्रीलंकाई आर्थिक संकट में भारत ने $4 बिलियन से अधिक की सहायता दी — ईंधन, खाद्य और दवाओं में। लेकिन चीनी ऋण जाल और हंबनटोटा पोर्ट जैसी परियोजनाएं श्रीलंका को चीन के प्रभाव में बनाए रखती हैं।

हालांकि, रानिल विक्रमसिंघे के नेतृत्व में भारत को रणनीतिक सहयोग मिला है, परंतु दीर्घकालीन रूप से श्रीलंका की आर्थिक और राजनयिक स्थिरता भारत के लिए अनिश्चित बनी हुई है।

अफगानिस्तान: तालिबान युग और भारत की उलझन

अमेरिका की वापसी और तालिबान की सत्ता में वापसी (2021) ने भारत को कूटनीतिक संकट में डाल दिया। भारत ने शुरू में तालिबान को मान्यता नहीं दी, लेकिन बाद में मानवीय सहायता के बहाने संपर्क बनाए।

भारत की अफगान नीति अस्पष्ट बनी हुई है। ईरान और रूस जैसे साझेदारों के साथ भारत का समन्वय सीमित है, और चीन अब अफगान भू-राजनीति में भारत से अधिक सक्रिय हैं।

पाकिस्तान: टकराव और 'ऑपरेशन सिंदूर'

भारत और पाकिस्तान के रिश्ते 2016 के उरी हमले और 2019 के पुलवामा हमले के बाद लगातार तनावपूर्ण बने रहे हैं। बालाकोट एयर स्ट्राइक, आर्टिकल 370 हटाने और क्रॉस-बॉर्डर सर्जिकल स्ट्राइक जैसी कार्रवाइयों ने संबंधों को स्थाई रूप से जटिल बना दिया है।

इस वर्ष पहलगाम आतंकी हमले के जवाब में 'ऑपरेशन सिंदूर' के बाद पाकिस्तान से कूटनीतिक संवाद लगभग स्थगित है और व्यापार, वीज़ा, सांस्कृतिक आदान-प्रदान — सब ठप हैं।

निष्कर्ष: सफलताएं और सीमाएं

मोदी सरकार की विदेश नीति ने भारत को वैश्विक मंच पर उभरती शक्ति के रूप में स्थापित करने की कोशिश की है — QUAD, G20, I2U2, और ISA जैसे मंचों पर सक्रिय भूमिका इसका प्रमाण है। जयशंकर की आक्रामक और स्पष्टवाणी रणनीति कुछ वर्गों में सराही गई है।

लेकिन पड़ोसी देशों के संदर्भ में, भारत की नीति अधिकतर प्रतिक्रियाशील रही है, रणनीतिक नहीं। जहां भारत की सॉफ़्ट पावर और विकास सहायता ने कुछ लाभ दिलाए, वहीं अत्यधिक सैन्यकरण, असमर्थ संवाद और राष्ट्रवाद आधारित कूटनीति ने विश्वास को क्षीण किया है।

मोदी की विदेश नीति को 'इवेंट-ड्रिवन डिप्लोमेसी' के रूप में देखा जा रहा है — मंच, भव्यता, कैमरे के लिए तैयार विदेश दौरे — लेकिन दीर्घकालीन रणनीति, खासकर पड़ोसियों के साथ, अभी भी अधूरी है। •

मोदी युग के बाद की तैयारी

फ्रांसीसी राजनीतिक वैज्ञानिक, समाजशास्त्री और भारत-विज्ञ क्रिस्टोफ़ जैफ़रलो ने राम माधव की किताब **'द न्यू वर्ल्ड: 21st सेंचुरी ग्लोबल ऑर्डर एंड इंडिया'** की समीक्षा की है। उन्होंने लिखा है कि यह किताब केवल हिंदुत्व का वैश्वीकरण नहीं करती, बल्कि एक प्रकार की आत्मचिंतनात्मक समीक्षा भी है, जहां विचारधारा, वैश्विक कूटनीति, और व्यावहारिक उपलब्धियों के बीच की खाई उजागर होती है। यह किताब शायद उस युग का शिलान्यास करती है जो 'मोदी युग' के बाद आएगा।

क्रिस्टोफ़ जैफ़रलो

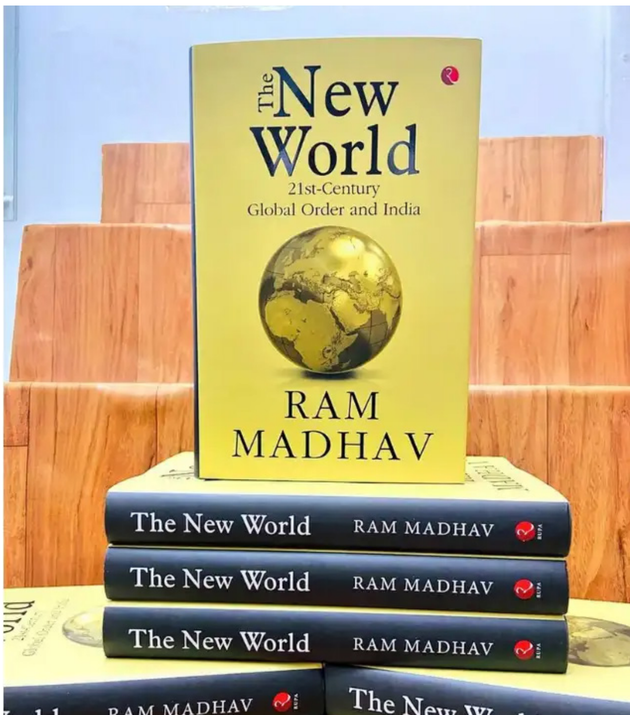

नरेंद्र मोदी की नीतियों की आलोचना अगर किसी प्रमुख हिंदुत्ववादी नेता की ओर से आए, तो यह अभूतपूर्व है। लेकिन राम माधव की नई किताब में व्यक्त विचारों को उनकी भूमिका के संदर्भ में आत्मालोचना भी माना जा सकता है।

राम माधव जो भारतीय जनता पार्टी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) से जुड़े वरिष्ठ नेता हैं, उनकी नई किताब 'द न्यू वर्ल्ड: 21st सेंचुरी ग्लोबल ऑर्डर एंड इंडिया' तीन स्तरों पर पढ़ी जा सकती है।

पहले हिस्से में वे मानव इतिहास की एक सामान्य सी कहानी सुनाते हैं, जो वर्णनात्मक है और यहां उसकी चर्चा नहीं की गई है। लेकिन दूसरे हिस्से में जब वे भारत पर बात करते हैं, तो अपने दृष्टिकोण को काफी दिलचस्प ढंग से सामने रखते हैं। वे भारत के 'महाशक्ति' बनने की संभावनाओं पर संशय जताते हैं, सरकारी नीतियों की अप्रत्यक्ष आलोचना करते हैं, और पहली बार किसी संघ-नेता द्वारा कांग्रेस की विरासत को आंशिक रूप से पुनर्स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

हिंदुत्व और 'नेशनल कंज़र्वेटिविज़्म' : राम माधव को आज हिंदू राष्ट्रवाद के 'ऑर्गेनिक इंटेलेक्चुअल' के रूप में देखा जाता है। लेकिन किताब में न तो सावरकर का ज़िक्र है, न ही संघ या इसके सहयोगी संगठनों का। उनका प्रयास हिंदुत्व को 'नेशनल कंज़र्वेटिविज़्म' के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में एक संस्करण के रूप में पेश करने का है, एक ऐसी विचारधारा जो दुनिया भर में लोकप्रिय हो रही है।

वे दावा करते हैं कि 'हिंदू और यूनानी सभ्यताओं' ने ईसा पूर्व में नैतिक व्यवस्था की नींव रखी। उसी दौरान 'हिंदुओं ने वेदों, उपनिषदों और शास्त्रों के ज़रिए एक श्रेष्ठ सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की'। वे भारत को पहले सहस्त्राब्दी में दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बताते हैं, यह अनदेखा करते हुए कि भारत की आर्थिक समृद्धि मुग़ल काल में चरम पर थी। लेकिन उनके लिए इस पतन का कारण है: 'पहले मुग़लों और मध्य एशियाई आक्रमणकारियों द्वारा उपनिवेशवाद और फिर अंग्रेजों

द्वारा 800 साल तक किया गया शोषण'।

सेमेटिक धर्मों के खिलाफ वैचारिक आक्रोश : माधव के अनुसार, भारत की प्राचीन समृद्धि का कारण 'हिंदू धर्म की सहिष्णुता' है, जबकि इस्लाम और ईसाइयत ने दुनिया को 'धर्मकेंद्रित तानाशाही में धकेल दिया', एक ऐसी व्यवस्था जिसमें 'धर्म के विरोध में कुछ भी नहीं टिक पाया'। यह कथन उस विरोधाभास को दर्शाता है कि हिंदुत्व में 'धर्म' की बात तो होती है, लेकिन हिंदू को एक जातीय पहचान के रूप में देखा जाता है, जो कि 'आर्य पूर्वजों' की संतान हैं और भारत 'पुण्यभूमि' है। इस दृष्टिकोण की तुलना यहूदियों की ज़ायोनिस्ट पहचान से की जा सकती है।

भारत का कूटनीतिक स्वप्न और विरोधाभास : राम माधव भारत को 'ब्रांड भारत' के रूप में वैश्विक मंच पर पेश करने की बात करते हैं और कहते हैं कि 'सॉफ्ट पावर का युग बीत गया है, अब स्मार्ट पावर का समय है'। लेकिन वे यह भी स्वीकार करते हैं कि इस दिशा में प्रगति बहुत सीमित रही है। वे भारत के संभावित साझेदारों की परिभाषा 'साझा दुश्मनों' के आधार पर करते हैं - जैसे 'लिबरल्स', 'कल्चरल मार्क्सिस्ट्स', 'इस्लामिस्ट्स', 'वोक एक्टिविस्ट्स' और NGOs। जॉर्ज सोरोस का ज़िक्र डर के प्रतीक के रूप में आता है, जिसे किसान आंदोलन और अदानी विवाद जैसे मुद्दों से जोड़ कर देखा जाता है।

'धर्मतंत्र' का विचार और सामाजिक संरचना का समर्थन : माधव के अनुसार भारत को 'धर्मतंत्र' (Dharmocracy) की ओर बढ़ना चाहिए— 'डेमोक्रेसी, द भारत वे'। इसका अर्थ है कि सत्ता जनता को जवाबदेह नहीं बल्कि धर्म को होगी - जैसा कि ब्राह्मण राजगुरु करते थे। यह एक प्रकार की हिंदू थिओक्रेसी की वकालत है। इतना ही नहीं, वे जाति व्यवस्था को भी भारत की 'विविधता' के अंग के रूप में वैध ठहराते हैं: 'भारत की जातीय, भाषायी और धार्मिक विविधता उसे रंग-बिरंगी और उत्सवधर्मी बनाती है'। मुसलमानों के साथ भेदभाव की बात को नकारते हुए वे जनसंख्या वृद्धि (7.81%) को अल्पसंख्यकों की 'सुविधा' का प्रमाण मानते हैं, जो एक सतही और भ्रामक सामाजिक विश्लेषण है।

प्रगतिशीलता पर संदेह और आत्मालोचना

किताब का दूसरा हिस्सा, जो भारत की विदेश नीति, रक्षा, और तकनीकी विकास पर केंद्रित है, चौंकाने वाली ईमानदारी से भरा है। मोदी सरकार की उपलब्धियों के संदर्भ में माधव सिर्फ प्रतीकों की बात करते हैं - जैसे सेंगोल का संसद में स्थापना करना, जबकि तकनीकी, आर्थिक और सैन्य क्षेत्रों में गंभीर कमियां गिनाते हैं।

वे कहते हैं कि भारत में:

- 'रिसर्च और इनोवेशन की संस्कृति नहीं है।'
- 'इंजीनियर्स की बजाय 'इमैजिनियर्स' चाहिए।'
- 'प्रतिलिपि करना नवाचार नहीं है, और नकल करना रचनात्मकता नहीं है।'

वे भारत की शिक्षा, R&D, क्वांटम टेक्नोलॉजी, रक्षा उत्पादन

(जैसे तेजस लड़ाकू विमान), और नौसेना की कमजोरियों की गंभीर आलोचना करते हैं।

राम माधव की किताब का शायद सबसे चौंकाने वाला पक्ष है - कांग्रेस नेताओं की बार-बार की गई तारीफः

- नेहरू की नेपाल और श्रीलंका में कूटनीति की प्रशंसा
- इंदिरा गांधी द्वारा बांग्लादेश की स्वतंत्रता में योगदान
- नरसिंह राव की लुक ईस्ट नीति
- मनमोहन सिंह की Indian Ocean Naval Symposium पहल

यह आंशिक स्वीकृति बताती है कि मोदी सरकार की विदेश नीति ने अब तक जो हासिल किया है, वह बेहद सीमित है।

'ब्रांड भारत' का स्वप्न और यथार्थ के बीच द्वंद्व : राम माधव अंततः स्वीकारते हैं कि भारत की 'डेमोग्राफिक डिविडेंड' एक भ्रम बन सकती है, अगर स्किलिंग, इनोवेशन, और रोजगार के क्षेत्र में निर्णायक हस्तक्षेप न किया जाए। वे लाल बहादुर शास्त्री को उद्धृत करते हैं - 'हम तभी दुनिया का सम्मान प्राप्त कर सकते हैं जब हम आंतरिक रूप से मजबूत हों और गरीबी-बेरोजगारी को दूर करें।' यह शायद यह संकेत है कि भाजपा को पहचान की राजनीति से ऊपर उठकर सामाजिक-आर्थिक समावेशन की ओर बढ़ना चाहिए। •

यह आलेख https://www.hharkaraonline.com **पर प्रकाशित है।**

श्रेया गुप्ता

मोदी का नया भारत आलोचना के लिए सिकुड़ती जगह!

भारत के लोकतंत्र को उसकी विविधता, असहमति और जीवंत बहसों ने ही मज़बूती दी है। संविधान ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार माना है, ताकि हर नागरिक सत्ता को सवालों के कठघरे में खड़ा कर सके। लेकिन बीते एक दशक में यह सवाल देशभर में गूँजने लगा है कि क्या भारत में असहमति को दबाया जा रहा है? क्या सरकार आलोचना को देशविरोधी करार देकर सिविल सोसाइटी की आवाज़ को कुचलने की कोशिश कर रही है? आज जब हम 'नया भारत' और 'विश्वगुरु' के सपनों की बात करते हैं, तब यह देखना बेहद ज़रूरी है कि इस विकास यात्रा में असहमति और आलोचना की जगह कितनी बची है।

मोदी सरकार के पहले कार्यकाल से ही सिविल सोसाइटी संगठनों, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और अकादमिक जगत के कुछ हिस्सों को नए किस्म के कानूनी और प्रशासनिक दबावों का सामना करना पड़ा। एफसीआरए (विदेशी चंदा विनियमन अधिनियम) में संशोधन कर कई नामी-गिरामी एनजीओ (गैर-सरकारी संगठनों) की

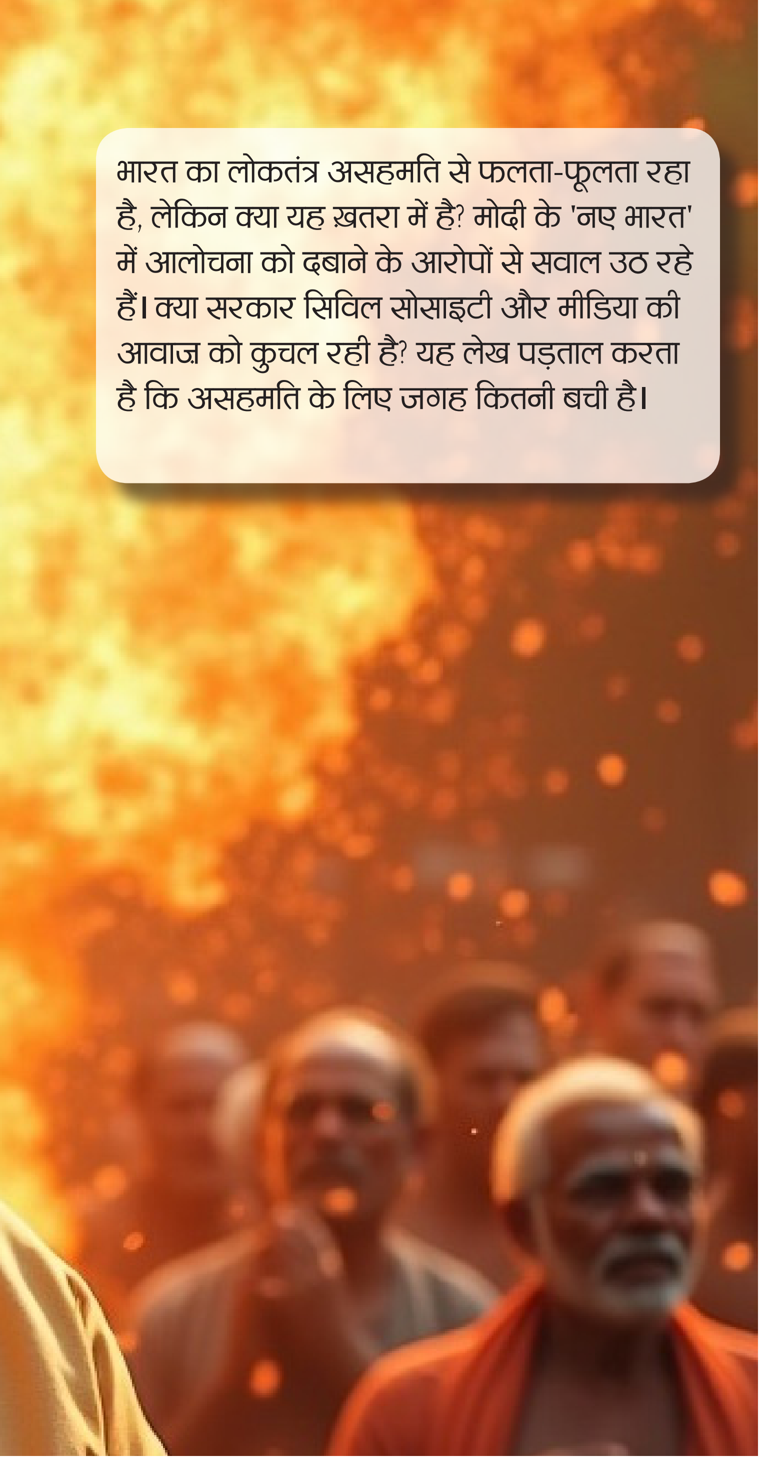

भारत का लोकतंत्र असहमति से फलता-फूलता रहा है, लेकिन क्या यह ख़तरा में है? मोदी के 'नए भारत' में आलोचना को दबाने के आरोपों से सवाल उठ रहे हैं। क्या सरकार सिविल सोसाइटी और मीडिया की आवाज़ को कुचल रही है? यह लेख पड़ताल करता है कि असहमति के लिए जगह कितनी बची है।

विदेशी फंडिंग पर रोक लगाई गई। एमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया, जिसने दशकों तक मानवाधिकारों के हनन पर सरकारों को आईना दिखाया, उसे 2020 में भारत में अपना काम समेटना पड़ा क्योंकि उसके बैंक खाते फ्रीज कर दिए गए थे। इसी तरह ग्रीनपीस, टेरे डेस होम्स और अन्य कई संगठनों पर विदेशी चंदा लेने के नियमों के उल्लंघन के आरोप लगाए गए। सरकार का पक्ष है कि ये संगठन नियमों का पालन नहीं करते और विदेशी पैसे से भारत के विकास प्रोजेक्ट्स में अड़ंगे डालते हैं। लेकिन सवाल ये है कि क्या पर्यावरण संरक्षण या मानवाधिकार पर आवाज़ उठाना विकास विरोधी है?

कर्नाटक की पर्यावरण कार्यकर्ता दिशा रवि का मामला आज भी युवाओं के ज़ेहन में ताज़ा है। दिशा को 2021 में 'टूलकिट' मामले में गिरफ्तार किया गया। यह 'टूलकिट' दरअसल किसानों के आंदोलन को अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उठाने से जुड़ा था। दिशा पर राजद्रोह जैसे गंभीर आरोप लगे, हालांकि बाद में उन्हें जमानत मिल गई। दिल्ली हाईकोर्ट ने कहा कि नागरिकों का मत रखना या आंदोलन का समर्थन करना देशद्रोह नहीं हो सकता। लेकिन गिरफ्तारी ने यह संदेश जरूर दे दिया कि सत्ता से असहमति रखने की कीमत चुकानी पड़ेगी।

पत्रकारिता, जिसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है, आज अपने सबसे कठिन दौर से गुजर रही है। कश्मीर टाइम्स की संपादक अनुराधा भसीन, जिन्होंने बार-बार कश्मीर में इंटरनेट बंदी और मीडिया पर अंकुश का मुद्दा उठाया, उनकी आवाज़ को प्रशासनिक स्तर पर दबाने की कोशिशें की गईं। कई स्वतंत्र पोर्टल जैसे न्यूजक्लिक, द वायर या ऑल्ट न्यूज़ ने सत्ता की कथित नाकामियों, घोटालों या सांप्रदायिक घटनाओं पर तथ्यात्मक रिपोर्टिंग की तो उन पर छापे पड़े, पत्रकारों को लंबी पूछताछ से गुज़ारना पड़ा। न्यूजक्लिक के संस्थापक को यूएपीए (गैरकानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम) जैसी कड़ी गैर-जमानती धारा में जेल भेजा गया। सरकार इन कार्रवाइयों को 'कानून के अनुसार' बताती है, लेकिन आलोचक कहते हैं कि यह विपक्षी आवाज़ों को 'ठंडा' करने की रणनीति का हिस्सा है।

मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के साथ भी हालात बेहतर नहीं हैं। भीमा कोरेगाँव हिंसा मामले में कई प्रतिष्ठित एक्टिविस्ट जैसे सुधा भारद्वाज, वरवरा राव, गौतम नवलखा को यूएपीए के तहत वर्षों तक जेल में रखा गया। आरोप है कि इन लोगों ने माओवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया। हालाँकि कई अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों और भारत के ही कुछ पूर्व न्यायाधीशों ने इस केस में सबूतों की विश्वसनीयता पर सवाल उठाए हैं। एल्गार परिषद का कार्यक्रम, जो वास्तव में अंबेडकरवादी विचारों के आदान-प्रदान का मंच था, उसे देशद्रोही गतिविधियों से जोड़ देना क्या लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन नहीं है?

अगर हम भारत के मौजूदा कानूनों पर नज़र डालें तो पाते हैं कि औपनिवेशिक काल का राजद्रोह कानून (आईपीसी 124ए) आज भी विरोधियों को चुप कराने का सबसे 'आसान' औजार बना हुआ है। सुप्रीम कोर्ट ने 2022 में इस पर रोक तो लगाई है, लेकिन ज़मीनी स्तर पर पुलिस और प्रशासन अब भी छोटे पत्रकारों, छात्रों और एक्टिविस्टों पर इसे लगाने में हिचकिचाते नहीं। इसके अलावा यूएपीए जैसी कड़ी गैर-जमानती धाराएँ सरकार की पसंदीदा बन गई हैं। इसका मकसद आतंकवाद से लड़ना था, लेकिन अब इसका इस्तेमाल असहमति को आतंक से जोड़ने में हो रहा है।

दूसरी तरफ डिजिटल स्पेस भी अब सुरक्षित नहीं रह गया है। नए

आईटी (सूचना प्रौद्योगिकी) नियमों के तहत सरकार सोशल मीडिया कंटेंट को हटाने और प्लेटफॉर्म्स को बंद करने की ताकत रखती है। ट्विटर या फेसबुक जैसी कंपनियों को सरकार की नीतियों पर सवाल उठाने वाले पोस्ट हटाने को मजबूर किया गया। हेट स्पीच या फेक न्यूज़ के नाम पर ऐसे कंटेंट हटाए गए जिनमें सरकार की आलोचना थी, लेकिन सत्ता समर्थक ट्रॉल आर्मी पर वैसी सख़्ती कम ही देखने को मिली। यही वजह है कि आज कई युवा, जो पहले ट्विटर पर मुखर थे, अब लिखने से पहले सौ बार सोचते हैं।

भारत के ये हालात हमें उन देशों की याद दिलाते हैं जहाँ लोकतंत्र नाममात्र का रह गया है। हंगरी में विक्टर ओरबान ने एनजीओ को 'विदेशी एजेंट' घोषित कर दिया ताकि वे सरकार के खिलाफ काम न कर सकें। रूस में एलेक्सी नवलनी जैसे विपक्षी नेताओं को जेल में डालकर विरोध कुचला गया। तुर्की में प्रेस पर सेंसरशिप ने एर्दोगन के खिलाफ आवाज़ को कमजोर कर दिया। भारत अभी पूरी तरह उस रास्ते पर नहीं गया है, लेकिन कई मानवाधिकार विशेषज्ञों का मानना है कि अगर असहमति की जगह और सिकुड़ती गई तो हम भी लोकतंत्र की बुनियादी आत्मा को खो सकते हैं।

सरकार का पक्ष भी समझना ज़रूरी है। मोदी सरकार कहती है कि देश को बदनाम करने की 'अर्बन नक्सल' लॉबी, विदेशी एजेंडा चलाने वाले एनजीओ और फेक न्यूज़ फैलाने वाले पत्रकार भारत के विकास को रोकना चाहते हैं। सच यह भी है कि कुछ एनजीओ विदेशी पैसे के सहारे अपारदर्शी तरीके से काम करते थे। लेकिन इसका समाधान क्या यह होना चाहिए कि हज़ारों ईमानदार संगठनों को भी शक के घेरे में डाल दिया जाए? क्या बेहतर नहीं होता कि पारदर्शिता बढ़ाई जाती, लेकिन एक स्वस्थ असहमति का माहौल बनाए रखा जाता?

इन दबावों के बावजूद सिविल सोसाइटी पूरी तरह हार नहीं मानी है। किसान आंदोलन इसका बड़ा उदाहरण है। तीन कृषि क़ानूनों के खिलाफ पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों ने महीनों तक दिल्ली की सीमाओं पर डेरा डाल कर शांतिपूर्ण आंदोलन किया। सरकार ने पहले उन्हें खालिस्तानी, विदेशी एजेंट और देशद्रोही कहा, लेकिन अंततः क़ानून वापस लेने पड़े। यह दर्शाता है कि लोकतंत्र में जनसंगठनों की ताकत अब भी कम नहीं हुई है।

भारत के संविधान निर्माताओं ने इस देश को बहुलवाद, धर्मनिरपेक्षता और असहमति की ताकत से सींचा था। डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि 'संविधान केवल कागज का दस्तावेज़ नहीं है, यह जीवंत समाज का प्रतिबिंब है।' अगर असहमति को अपराध बना दिया जाएगा तो संविधान की आत्मा को ही चोट पहुँचेगी।

आज ज़रूरत इस बात की है कि हम असहमति को राष्ट्रविरोध से अलग करना सीखें। जो सरकारें हर सवाल को साजिश समझती हैं, वे ही कमजोर होती जाती हैं। स्वस्थ लोकतंत्र में आलोचना दुश्मनी नहीं बल्कि सुधार का रास्ता होती है। मीडिया को 'गोदी मीडिया' या 'अंधविरोधी मीडिया' में बाँटने से बेहतर है कि उसे स्वतंत्र, सशक्त और जवाबदेह बनाया जाए। एनजीओ को अपराधी की तरह नहीं बल्कि साझेदार की तरह देखा जाए। विरोधी विचारधाराओं को देशद्रोही ठहराने से बेहतर है कि उनसे संवाद किया जाए।

इस पूरी बहस में न्यायपालिका की भूमिका भी अहम है। सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट्स ने कई मामलों में सरकार की कठोर कार्रवाइयों पर रोक लगाई है, लेकिन अदालतों को भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि न्याय देर से मिलेगा तो असहमति की आवाज़ें कब की खामोश हो चुकी होंगी।

भारत की युवा पीढ़ी के पास डिजिटल माध्यम से अपनी बात कहने के तमाम नए साधन हैं। लेकिन डर यह है कि अगर हर ट्वीट या पोस्ट के लिए जेल जाने का खतरा होगा तो कितने युवा आगे आ पाएँगे? डर का यही माहौल लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा ख़तरा है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी भारत की छवि प्रभावित हो रही है। वर्ल्ड प्रेस फ्रीडम इंडेक्स में भारत लगातार नीचे खिसकता गया है। 2023 में भारत 161वें स्थान पर पहुँच गया। एमनेस्टी इंटरनेशनल, ह्यूमन राइट्स वॉच जैसी संस्थाओं की रिपोर्ट्स भारत में सिविल सोसाइटी पर बढ़ते दबाव को विस्तार से रेखांकित करती हैं। सरकार इन्हें पश्चिमी प्रोपेगेंडा बताकर खारिज कर देती है, लेकिन इससे जमीनी सच्चाई बदल नहीं जाती।

आज जब हम 'विश्वगुरु' बनने की बात करते हैं तो हमें यह भी याद रखना चाहिए कि दुनिया उन्हीं देशों से सीखना चाहती है जहाँ बोलने की आज़ादी, आलोचना और विरोध को लोकतंत्र की ताकत माना जाता है। अमेरिका में वियतनाम युद्ध के विरोध से लेकर ब्रिटेन में जलवायु आंदोलन तक, कहीं भी विरोध को देशद्रोह नहीं माना गया। भारत अगर वैश्विक नेतृत्व चाहता है तो उसे अपने भीतर की आवाज़ों को दबाने के बजाय सुनना होगा।

अंत में यही कहा जा सकता है कि सिविल सोसाइटी पर बढ़ता दबाव न सिर्फ असहमति को खतरे में डाल रहा है, बल्कि यह भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को भी कमजोर कर रहा है। एक ऐसा राष्ट्र जहाँ एनजीओ, पत्रकार, एक्टिविस्ट और आम लोग बिना डरे अपनी बात कह सकें - वही वास्तव में मज़बूत लोकतंत्र होता है। इतिहास गवाह है कि जब-जब विरोध को दबाया गया है, तब-तब समाज में असंतोष की चिंगारी ने बड़ा विस्फोट किया है। बेहतर यही होगा कि सरकारें आलोचना को दुश्मनी की तरह नहीं बल्कि लोकतांत्रिक संवाद के हिस्से के रूप में स्वीकारें। तभी 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास' नारा सिर्फ जुमला नहीं रहेगा, बल्कि ज़मीनी हकीकत भी बनेगा। ●

श्रेया गुप्ता वर्तमान में कल्ट करंट में पत्रकारिता कर रही हैं और वैश्विक राजनीति पर पैनी दृष्टि रखती हैं।

क्या भारत बन सकता है वैश्विक व्यापार का नया स्तंभ ?

बिखरती वैश्विक व्यवस्था के बीच भारत एक नई आर्थिक धुरी बनने की ओर अग्रसर है। यह लेख विश्लेषण करता है कि क्या भारत उभरती वैश्विक अनिश्चितताओं के बीच नई आर्थिक रेखा खींचने की रणनीतिक क्षमता रखता है।

रिया गोयल

एक समय था जब पूरी दुनिया एक ही दिशा में बढ़ती दिख रही थी — खुले बाज़ार, साझा उत्पादन प्रणालियाँ, और बहुपक्षीय संस्थाएं जो आर्थिक अलगाव को रोकने के लिए बनाई गई थीं। वैश्वीकरण कोई कल्पना नहीं, बल्कि विश्व अर्थव्यवस्था की धड़कन था, जिसमें व्यापार निर्बाध रूप से बहता था और आपूर्ति श्रृंखलाएं आपस में गहराई से जुड़ी थीं। लेकिन आज वही दुनिया बदल रही है — कभी धीरे-धीरे, तो कभी भूचाल की तरह। व्यापार युद्ध, ऊर्जा राष्ट्रवाद और आपूर्ति श्रृंखलाओं का पुनर्गठन वैश्वीकरण के उन ढांचों को तोड़ रहे हैं जो कभी इसकी रीढ़ हुआ करते थे। भारत इस परिवर्तन का न केवल एक सहभागी है, बल्कि एक साक्षी भी है। यह बदलाव जितना वास्तविक है, उतनी ही इसमें संभावनाएं भी छिपी हैं।

बहुपक्षवाद की टूटती नींव

व्यापार युद्धों ने केवल माल की आवाजाही को नहीं रोका, बल्कि वैश्विक सहमति की कमजोरियों को उजागर कर दिया। अमेरिका और

चीन के बीच की तनातनी इसकी शुरुआत मात्र थी — अरबों डॉलर के उत्पादों पर टैरिफ, जवाबी प्रतिबंध और WTO की समाधान प्रणाली का कमजोर पड़ना इस ओर संकेत था कि अब फैसले साझा नहीं, सौदों पर आधारित होंगे। नतीजा यह हुआ कि विश्व व्यापार संस्थाओं में विश्वास डगमगाने लगा — सिर्फ वॉशिंगटन या बीजिंग में नहीं, बल्कि पूरे विश्व की राजधानियों में।

भारत, जो हमेशा बहुपक्षीय मंचों पर सतर्क रहा है, इस बदलाव को जल्दी समझ गया। RCEP से भारत का पीछे हटना सिर्फ घरेलू उद्योग की रक्षा नहीं था — यह एक रणनीतिक निर्णय था। अगर बड़े व्यापारिक समूह शक्तिशाली देशों की मर्ज़ी पर चल सकते हैं, तो छोटे देश दोतरफा सौदों के ज़रिए अपनी शर्तें तय करना चाहेंगे। पर क्या यह द्विपक्षीय तरीका लंबे समय तक टिकाऊ होगा? या यह सिर्फ एक अस्थायी समाधान है, जब तक नया वैश्विक ढांचा आकार ले?

द्विपक्षीयता: समझौता या आत्मनिर्भरता की रणनीति?

भारत ने जिस तरह ऑस्ट्रेलिया, यूएई और यूरोपीय देशों के साथ द्विपक्षीय व्यापार समझौते किए हैं, वह इस बात का संकेत है कि भारत वैश्विक व्यापार से विमुख नहीं, बल्कि सतर्क हो गया है। यह साझेदारियाँ केवल आर्थिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि रणनीतिक संतुलन साधने के लिए की जा रही हैं। लेकिन इस रास्ते में चुनौतियां भी हैं। द्विपक्षीय समझौते अक्सर ताकतवर देशों के पक्ष में झुकते हैं, जैसा कि भारत और अमेरिका के रिश्तों में दिखता है — जहां अमेरिका अब उदार सहयोगी नहीं, बल्कि सौदेबाज़ बन गया है। भारत के लिए मुश्किल यह है कि वह न तो घरेलू प्राथमिकताओं से समझौता कर सकता है, और न ही वैश्विक साझेदारों को नाराज़ कर सकता है।

आपूर्ति श्रृंखला का पुनर्गठन: अवसर या अवरोध?

कोविड महामारी ने यह सिखाया कि कुशल आपूर्ति श्रृंखलाएं लचीली नहीं थीं। जैसे ही उत्पादन ठप हुआ और ज़रूरी सामानों की किल्लत हुई, दुनिया को अहसास हुआ कि वैश्वीकरण की यह प्रणाली एक 'ताश का महल' थी — और इसका केंद्र चीन था। भारत ने इसे अवसर के रूप में देखा और तेज़ी से कदम उठाए।

PLI योजनाओं के तहत सरकार ने इलेक्ट्रॉनिक्स, फार्मा और सेमीकंडक्टर जैसे क्षेत्रों को बढ़ावा दिया। Apple और Micron जैसी कंपनियों ने भारत में निर्माण की योजनाएं बनाईं। ‘फ्रेंडशोरिंग’ का विचार — यानी भरोसेमंद देशों में निर्माण — भारत के पक्ष में जाता दिखा। लेकिन सिर्फ इंसेंटिव काफी नहीं हैं। निवेशकों को भरोसा चाहिए — नीति स्थिरता, आधारभूत ढांचा और प्रशासनिक दक्षता, जिनमें भारत को अब भी बहुत सुधार करना है। क्या भारत चीन का विकल्प बन सकता है — या वह खुद एक नई वैश्विक निर्माण शक्ति बन सकता है?

ऊर्जा राष्ट्रवाद: नई संप्रभुता की होड़

अगर व्यापार और उत्पादन ने वैश्वीकरण की नींव हिला दी, तो ऊर्जा सुरक्षा ने उसे पूरी तरह झकझोर दिया। रूस-यूक्रेन युद्ध और इसके कारण लगे प्रतिबंधों ने तेल-गैस बाज़ारों को उथल-पुथल कर दिया और राष्ट्रों को यह सिखा दिया कि ऊर्जा की संप्रभुता सबसे ऊपर है। अब सिर्फ कोयला या तेल नहीं, बल्कि सौर पैनल, बैटरियां और लिथियम जैसी खनिज संपत्तियां नई दौड़ का हिस्सा हैं।

भारत, जो 80% से ज़्यादा कच्चा तेल आयात करता है, ने यथार्थवादी रवैया अपनाया। रूस से सस्ता तेल खरीदना पश्चिम को नागवार तो गुज़रा, लेकिन भारत के लिए यह मुद्रास्फीति पर नियंत्रण और आर्थिक राहत का ज़रिया बना। साथ ही, भारत ने 2030 तक 500 GW ग्रीन एनर्जी का लक्ष्य रखा है। लेकिन इसके लिए जो कच्चा

माल चाहिए — लिथियम, कोबाल्ट, रेयर अर्थ मेटल्स — वह भारत के पास सीमित है। फिर वही सवालः क्या आत्मनिर्भरता दूसरों पर संरचित निर्भरता के ज़रिए हासिल होगी?

संरक्षणवाद की वापसी: रणनीतिक वापसी या पुरानी सोच?

संरक्षणवाद — यानी अपने घरेलू उद्योगों को बाहरी प्रतिस्पर्धा से बचाना — वैश्विक राजनीति में फिर लौट आया है, इस बार 'आत्मनिर्भरता' के नाम पर। भारत का 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान इसी सोच का हिस्सा है, जिसमें आयात प्रतिस्थापन, टैरिफ बढ़ोतरी और घरेलू उत्पादन को बढ़ावा दिया गया। लेकिन परिणाम मिश्रित रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे क्षेत्र में निवेश आया है, लेकिन अन्य क्षेत्रों में निर्माण धीमा है। टैरिफ दीवारें विदेशी निवेशकों को रोक भी सकती हैं। क्या भारत थोड़ी उदारता दिखाकर अमेरिका और यूरोप से निवेश व तकनीकी सहयोग हासिल कर सकता है?

दो ध्रुवों के बीच भारत: स्वतंत्र लेकिन अकेला?

भारत की विदेश नीति की नींव 'रणनीतिक स्वायत्तता' पर रही है — न किसी खेमे में जाना, न किसी के खिलाफ जाना। लेकिन अब अमेरिका-चीन के बीच खिंचती रेखाएं भारत पर दबाव बना रही हैं। भारत की रणनीति स्पष्ट हैः सहयोग करो, पर गठबंधन में मत बंधो। Quad इसका उदाहरण है — अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया और भारत का साथ, लेकिन बिना किसी सैन्य संधि के। भारत रूस से तेल खरीदता है, और अमेरिका से रक्षा सौदे करता है। यह विरोधाभास नहीं, रणनीतिक संतुलन है। लेकिन इससे भारत कुछ चीजों से वंचित रह जाता है — जैसे अमेरिका के टेक्नोलॉजी फ्रेमवर्क में प्रवेश या वैश्विक मानकों के निर्धारण में भूमिका। चीन की एलएसी पर आक्रामकता और क्षेत्रीय प्रभुत्व की कोशिशें भारत के लिए खतरे बढ़ाती हैं। कब तक भारत यह संतुलन साध सकता है?

क्षेत्रीय प्रभाव: घटती साख?

दक्षिण एशिया में भारत की पारंपरिक नेतृत्व भूमिका को चीन ने चुनौती दी है — इन्फ्रास्ट्रक्चर, हथियारों और वित्त के ज़रिए। श्रीलंका, मालदीव और पाकिस्तान में चीन की पैठ भारत की चिंता का कारण है। भारत ने मुद्रा विनिमय, सैन्य अभ्यास और सहायता के ज़रिए जवाब तो दिया है, लेकिन दक्षिण एशिया आज भी विश्व का सबसे कम आर्थिक रूप से जुड़ा क्षेत्र है। यह भारत के प्रभाव को कम करता है। अगर भारत अपने पड़ोस को केवल सुरक्षा क्षेत्र न मानकर आर्थिक अवसर माने, तो स्थिति बदली जा सकती है।

तकनीकी आकांक्षाएं: क्षमता और बाधाएं

वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के पुनर्गठन, चीन पर निर्भरता की घटती प्रवृत्ति और तकनीक व हरित ऊर्जा जैसे क्षेत्रों में निवेश के बढ़ते अवसरों के बीच भारत के पास एक ऐतिहासिक मौका है। यदि भारत नीति-निर्माण, बुनियादी ढांचे और वैश्विक साझेदारियों में तेजी लाता है, तो वह वैश्विक आर्थिक नेतृत्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

भारत की वैश्विक भूमिका तकनीक के बिना अधूरी है। AI से लेकर सेमीकंडक्टर तक, भारत उच्च मूल्य श्रृंखला में ऊपर जाना चाहता है। प्रतिभा तो है, लेकिन उत्पादन ढांचा कमज़ोर है। रक्षा उत्पादन विदेशी निर्भरता पर टिका है, और डेटा लोकलाइजेशन जैसी नीतियां निवेशकों को असहज करती हैं। आगे का रास्ता सहयोग में है — को-प्रोडक्शन, टेक्नोलॉजी ट्रांसफर और वैश्विक R&D में भागीदारी। लेकिन इसके लिए भारत को डिजिटल संप्रभुता और खुलेपन के बीच संतुलन साधना होगा। क्या भारत अपने डेटा की रक्षा करते हुए विकास को गति दे सकता है?

निष्कर्ष: एक बहुध्रुवीय, रणनीतिक भविष्य की ओर

वैश्वीकरण का पतन एक वापसी नहीं, बल्कि पुनर्गठन है। राष्ट्र अपने आर्थिक रिश्तों को नए सिरे से परिभाषित कर रहे हैं, प्राथमिकताओं को बदल रहे हैं, और व्यापार तथा ऊर्जा में सुरक्षा को पहले रख रहे हैं। इस बदलती दुनिया में लचीलापन ही ताकत है। भारत की प्रतिक्रिया अब तक संतुलित रही है — बहुपक्षवाद की जगह द्विपक्षीयता, गठबंधन से बचते हुए रणनीतिक स्वायत्तता, और अंधे खुलेपन की जगह राष्ट्रीय सुरक्षा। यह वैश्वीकरण का इनकार नहीं, बल्कि उसे भारतीय शर्तों पर परिभाषित करने की कोशिश है। पर अब वक्त है सिर्फ सतर्कता नहीं, रणनीतिक साहस दिखाने का — नीतियों में ही नहीं, क्रियान्वयन में भी।

दुनिया अगर खंडित लेकिन जुड़ी हुई दिशा में जा रही है, तो भारत को खुद से पूछना होगा — क्या वह प्रतिक्रिया देने वाला देश बना रहना चाहता है, या अब वह वक्त आ गया है जब वह खुद खेल के नियम लिखे? •

रिया गोयल अपने कार्य में जिज्ञासा और दृढ़ विश्वास के साथ 'कल्ट करंट' में अपना योगदान देती हैं।

A platform dedicated to geopolitical and global affairs, as well as analysis related to India and Indianness

CULT CURRENT

WE MAKE VIEWS

Join the YouTube channel ›

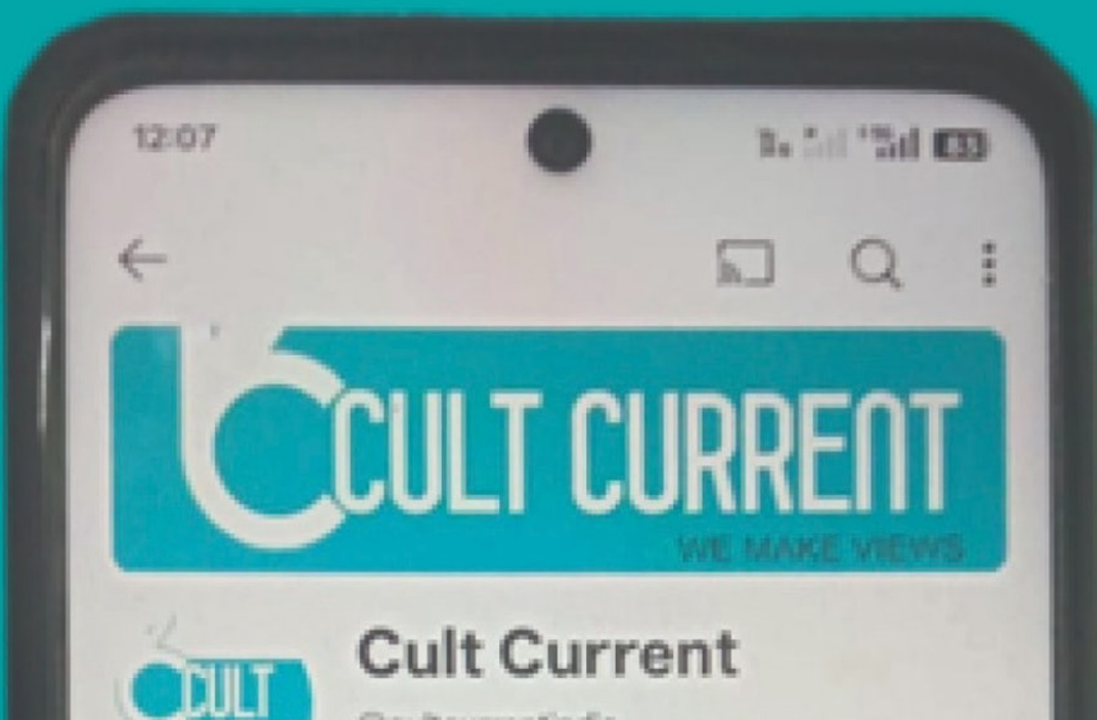

जल-संघर्ष

भारत का जल संकट व वैश्विक जोखिम

भारत में जल संकट तेजी से गहराता जा रहा है, जो न केवल पर्यावरणीय चुनौती है, बल्कि आर्थिक, सामाजिक और रणनीतिक संकट का रूप ले चुका है। जलवायु परिवर्तन, नीति विफलता और संसाधनों के अति-दोहन के बीच यह संकट अब एक बहुआयामी राष्ट्रीय आपदा बन चुका है।

धनिष्ठा डे

भारत एक गहरे जल संकट की ओर तेजी से अग्रसर है, जो उसकी आर्थिक प्रगति और सामाजिक स्थिरता के लिए गंभीर खतरा बन चुका है। यह संकट केवल पर्यावरणीय नहीं, बल्कि एक बहुआयामी चुनौती है जो नीतिगत ढांचे, जलवायु परिवर्तन, संसाधनों के अनियंत्रित दोहन और शासन की विफलताओं के कारण उत्पन्न हुआ है।

दुनिया की 18 प्रतिशत आबादी वाले इस देश के पास केवल 4 प्रतिशत ताजे जल संसाधन हैं। केंद्रीय जल आयोग (CWC) के आंकड़ों के अनुसार, भारत में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 1951 में 5,177 घन मीटर थी, जो 2021 में घटकर 1,486 घन मीटर रह गई है। जल शक्ति मंत्रालय का अनुमान है कि यह संख्या 2040 तक 1,400 घन मीटर से भी नीचे जा सकती है, जिससे भारत 'जल-संकटग्रस्त' देश बन जाएगा। यदि यही प्रवृत्ति जारी रही, तो भारत 2030 तक 'जल-अभावग्रस्त' श्रेणी में आ सकता है।

भारत में जल संकट का एक प्रमुख कारण भूमिगत जल का अत्यधिक और अनियंत्रित दोहन है। भारत हर वर्ष लगभग 251 अरब घन मीटर भूजल निकालता है, जो कि विश्व में सर्वाधिक है और वैश्विक भूजल दोहन का लगभग 25 प्रतिशत हिस्सा है। केंद्रीय भूजल बोर्ड (CGWB) की 2023 की रिपोर्ट बताती है कि भारत के 6,965 भूजल आकलन खंडों में से 17 प्रतिशत 'अति-दोहन' की श्रेणी में आते हैं। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और कर्नाटक जैसे राज्यों में जल स्तर प्रति वर्ष 1 मीटर से अधिक की दर से गिर रहा है, जो एक गंभीर चेतावनी है।

भारत में भूमिगत जल के अति-दोहन को अप्रत्यक्ष रूप से सरकारी नीतियों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। बिजली, उर्वरक और न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) आधारित फसल खरीद प्रणाली ने धान और गेहूं जैसी जल-गहन फसलों को बढ़ावा दिया है, भले ही ये फसलें पर्यावरणीय दृष्टि से उस क्षेत्र के लिए उपयुक्त न हों। इससे न केवल जल संकट बढ़ा है, बल्कि क्षेत्रीय पारिस्थितिकी तंत्र भी प्रभावित हुआ है।

जल संकट को और भी गंभीर बनाता है अवैध और अनियंत्रित रेत खनन, जो अक्सर चर्चा से बाहर रह जाता है। रेत खनन नदियों की आकृति को बिगाड़ता है, जल प्रवाह को कम करता है और भूजल पुनर्भरण की प्रक्रिया को बाधित करता है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु जैसे राज्यों में नदियों की गहराई कई मीटर तक बढ़ गई है, जिससे वाष्पीकरण में वृद्धि और जल पुनर्भरण में कमी आई है। यह सब मिलकर जल संकट को और गहरा बनाता है।

भारत की कृषि क्षेत्र लगभग 78 प्रतिशत ताजे जल का उपभोग करता है। सरकार की खरीद नीतियों और बिजली सब्सिडी ने धान और गन्ना जैसी फसलों की खेती को प्रोत्साहित किया है, भले ही ये फसलें क्षेत्रीय जलवायु और पारिस्थितिकी के अनुकूल न हों। फसल विविधता की कमी और जल-कुशल सिंचाई तकनीकों को न अपनाने से जल संसाधनों पर अत्यधिक दबाव बना है। इससे न केवल जल की बर्बादी होती है, बल्कि किसानों की आय और क्षेत्रीय जल सन्तुलन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

शहरीकरण और औद्योगीकरण के विस्तार ने जल संकट को और विकराल बना दिया है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या और औद्योगिक मांग ने जल की मांग को आपूर्ति से कहीं आगे पहुंचा दिया है। शहरी जल वितरण प्रणाली पुरानी, अव्यवस्थित और लीकेज से भरी हुई है। पाइपलाइनों में रिसाव, अवैध कनेक्शन और अव्यवस्थित सीवरेज व्यवस्था जल संकट को और बढ़ाते हैं। अधिकांश नगरों में नियमित और सुरक्षित पेयजल आपूर्ति अभी भी एक सपना ही बनी हुई है।

भारत के जल ढांचे, विशेषकर बड़े बांध और नहरें, 20वीं सदी के मध्य में बनाए गए थे, जब जलवायु अपेक्षाकृत स्थिर थी। लेकिन अब जब मानसून की अनिश्चितता, बाढ़ और सूखा एक साथ देखे जा रहे हैं, तो ये ढांचे अप्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं। वर्षा के असमान वितरण से बांधों की बाढ़-नियंत्रण क्षमता सीमित हो गई है। लंबे सूखे के समय जल प्रबंधन की खामियाँ उजागर होती हैं। 2021 का 'डैम सेफ्टी एक्ट' एक सराहनीय कदम है, लेकिन भारत के 70

प्रतिशत बांध 25 साल से पुराने हैं और उन्हें तत्काल निरीक्षण, मरम्मत और आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।

भारत वैश्विक मंचों पर जलवायु न्याय की बात तो करता है, लेकिन जल संकट शायद ही कभी संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (UNFCCC) जैसी वार्ताओं में प्राथमिकता पाता है। इससे भारत उन अवसरों को खो देता है जहाँ वह जल-केंद्रित वित्तीय सहायता, जल-स्मार्ट कृषि या ट्रांसबाउंड्री नदी जोखिम जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर वैश्विक समर्थन प्राप्त कर सकता है।

1950 से 2020 तक भारत में मानसूनी वर्षा में 10 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई है, लेकिन असली समस्या वर्षा की असमानता है। अब वर्षा कम समय में अत्यधिक मात्रा में होती है, जिससे बाढ़ तो आती है लेकिन भूजल रिचार्ज नहीं हो पाता। 'गीले दौर में सूखे अंतराल' की घटनाएं 50 प्रतिशत बढ़ गई हैं, जिससे खेती की योजना और सिंचाई की मांग गड़बड़ा जाती है।

जल की मात्रा के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता भी दिन-ब-दिन खराब होती जा रही है। अपशिष्ट जल, रासायनिक कचरा और औद्योगिक प्रदूषण ने 70 प्रतिशत सतही जल को अनुपयोगी बना दिया है। शहरों में बोतलबंद पानी और निजी टैंकरों का व्यापार 24,000 करोड़ से अधिक का हो गया है, जो अमीर-गरीब के बीच गहरी असमानता पैदा कर रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भारत में 16.3 करोड़ लोग स्वच्छ पेयजल से वंचित हैं और 21 करोड़ लोग बुनियादी स्वच्छता से। हर साल लगभग 3.8 करोड़ लोग जलजनित बीमारियों से प्रभावित होते हैं। सिर्फ दस्त से ही बच्चों की मृत्यु दर का 10 प्रतिशत हिस्सा होता है। बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में भूजल में आर्सेनिक की उपस्थिति कैंसर और अन्य दीर्घकालिक बीमारियों को जन्म दे रही है।

आईआईटी की रिपोर्ट के अनुसार, यमुना और मीठी जैसी नदियों और शहरी कचरा स्थलों के पास भूजल में माइक्रोप्लास्टिक कणों की उपस्थिति चिंताजनक स्तर पर पहुंच चुकी है। यह खतरा अभी तक नीतियों में प्राथमिकता नहीं पा सका है, जबकि इसके दीर्घकालिक प्रभाव गंभीर हो सकते हैं।

भारत का जल संकट अब केवल एक पर्यावरणीय मुद्दा नहीं है। यह अब एक बहुआयामी संकट बन चुका है, जो देश की वित्तीय योजना, सार्वजनिक स्वास्थ्य, राष्ट्रीय सुरक्षा, व्यापार नीति और अंतरराष्ट्रीय कूटनीति से गहराई से जुड़ा हुआ है। इसका समाधान केवल अवसंरचना निर्माण से नहीं, बल्कि नीति सुधार, वैज्ञानिक नवाचार, कानूनी प्रतिबद्धता और शासन की जवाबदेही से ही संभव है।

कृषि क्षेत्र में व्यापक सुधारों की आवश्यकता है। सरकार को जल-गहन फसलों से हटकर मोटे अनाज, दालों और तिलहन की ओर किसानों को प्रोत्साहित करना चाहिए। तमिलनाडु में सिस्टम ऑफ राइस इंटेंसिफिकेशन (SRI) और पंजाब में राइस की डायरेक्ट सीडिंग जैसी तकनीकों ने दिखाया है कि जल उपयोग को कम करके भी उपज को बरकरार रखा जा सकता है। किसानों को जल-कुशल सिंचाई प्रणालियों की जानकारी और सहायता दी जानी चाहिए।

शहरी जल प्रबंधन में भी क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। स्मार्ट मीटरिंग, पाइप रिसाव की रोकथाम, अपशिष्ट जल के पुनर्चक्रण और वर्षा जल संचयन को शहरी नियोजन में शामिल करना चाहिए। हरित बुनियादी ढांचे के माध्यम से पुनर्भरण और जल संचयन को बढ़ावा देना आवश्यक है।

भारत के पास अब तक कोई बाध्यकारी राष्ट्रीय जल नीति नहीं

अपशिष्ट जल का अनुमानित प्रक्षेपण

भारत में कुल अपशिष्ट जल (गंदे पानी) का उत्पादन अगले 25 वर्षों में 75 से 89 प्रतिशत तक बढ़ जाएगा, जो 2050 तक अनुमानित रूप से 0.13 मिलियन एमएलडी (मिलियन लीटर प्रति दिन) तक पहुँच सकता है।

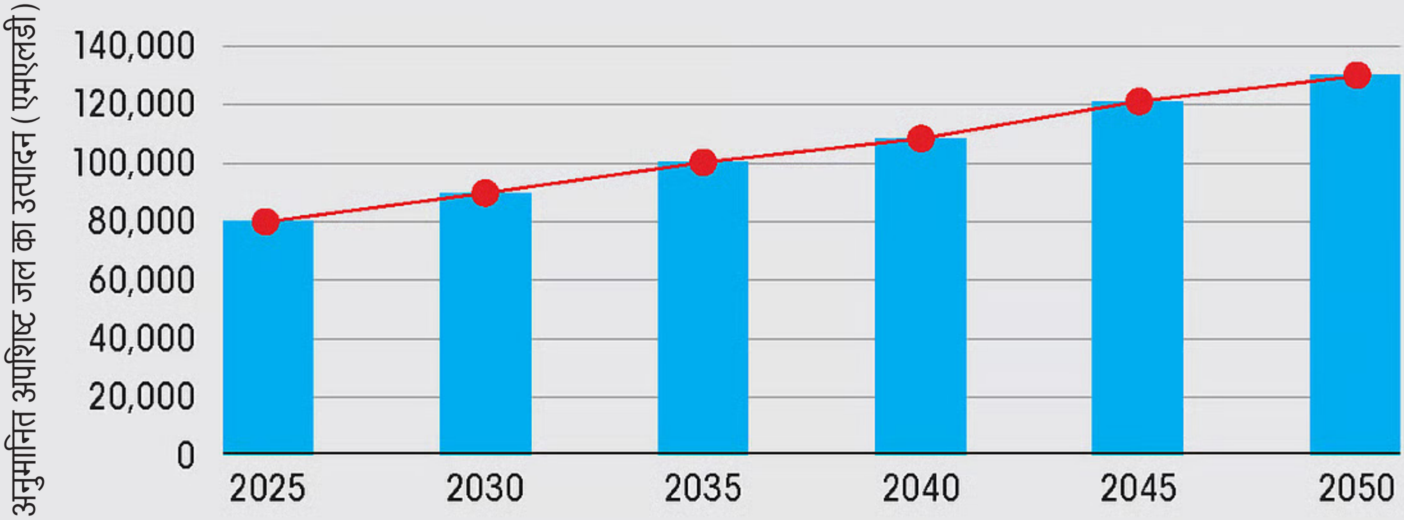

एमएलडी : मिलियन लीटर प्रति दिन; स्रोत : नीति आयोग

है। संविधान के अनुसार जल राज्यों का विषय है, जिससे नीतियों में समन्वय की कमी रहती है। 2020 की ड्राफ्ट जल नीति अभी भी समीक्षा में है, जबकि कई राज्य अब भी जल-गहन फसलों को बढ़ावा दे रहे हैं और जल संरक्षण के लिए बहुत कम प्रोत्साहन देते हैं।

जल संकट से जुड़ी बीमा और वित्तीय योजनाएं भी लगभग अनुपस्थित हैं। जबकि कृषि बीमा को कुछ हद तक राज्य समर्थन प्राप्त है, उद्योगों के लिए जल संकट से जुड़ी हानि की भरपाई का कोई तंत्र विकसित नहीं हो पाया है। विश्व आर्थिक मंच (WEF) पहले ही जल संकट को वैश्विक व्यापार निरंतरता के पांच शीर्ष जोखिमों में गिन चुका है, लेकिन भारत की वित्तीय व्यवस्था अभी भी इस जोखिम की गणना या मूल्य निर्धारण करने में असमर्थ है।

जल जीवन मिशन, जिसे 2019 में शुरू किया गया था, का उद्देश्य 2024 तक सभी ग्रामीण घरों में नल से जल पहुँचाना है। जुलाई 2025 तक 72% ग्रामीण घरों में पाइप जल पहुँच चुका है, जो 2019 में केवल 16% था। हालांकि, पूर्वी और मध्य भारत के कई राज्य अभी भी पीछे हैं। समुद्री जल शुद्धिकरण (डीसैलीनेशन) को अंतिम उपाय के रूप में अपनाया जा रहा है। चेन्नई में दो डी-सैलीनेशन संयंत्र चालू हैं, और 400 मिलियन लीटर प्रतिदिन की अतिरिक्त क्षमता की योजना है। लेकिन यह प्रक्रिया ऊर्जा-गहन, महंगी (70–90 प्रति किलोलीटर) और समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र के लिए हानिकारक है।

वर्ल्ड बैंक द्वारा समर्थित अटल भूजल योजना सात राज्यों के 8,300 से अधिक ग्राम पंचायतों में भागीदारी आधारित भूजल प्रबंधन को प्रोत्साहित कर रही है। इस योजना ने सामुदायिक जल बजट और एक्वीफर मैपिंग के माध्यम से भूजल स्तर में प्रारंभिक सुधार दिखाए हैं।

भारत का जल संकट अब चेतावनी नहीं, बल्कि वास्तविकता बन चुका है। इसे हल करने के लिए भारत को बहुआयामी, दीर्घकालिक और समावेशी रणनीति अपनानी होगी। केवल अवसंरचना नहीं, बल्कि शासन सुधार, वैज्ञानिक नवाचार, कानूनी मजबूती और वित्तीय पुनर्विनियोजन की आवश्यकता है। तभी जल-संघर्ष को नियंत्रित कर भारत अपने भविष्य को सुरक्षित रख पाएगा। •

धनिष्ठा डे एक जिज्ञासु पत्रकार हैं, जो वर्तमान में कल्ट करंट में अपना योगदान दे रही हैं।

तेल का खेल और भारत की रणनीतिक स्वायत्तता

अमेरिका द्वारा रूसी तेल पर निर्भरता के कारण भारत पर भारी टैरिफ लगाने की धमकी ने नई दिल्ली को एक मुश्किल चौराहे पर ला खड़ा किया है। क्या भारत अपनी ऊर्जा सुरक्षा के लिए अमेरिका के दबाव में झुकेगा, या अपनी रणनीतिक स्वायत्तता को बरकरार रखेगा? यह संकट न केवल भारत की आर्थिक नीति को चुनौती दे रहा है, बल्कि अमेरिका के साथ उसके संबंधों की गहराई पर भी सवाल उठा रहा है। क्या अमेरिका भारत को एक सहयोगी मानता है, या सिर्फ एक मोहरा? अब भारत को कूटनीति, विविधीकरण और रणनीतिक दूरदर्शिता से अपने हितों की रक्षा करनी होगी।

मनीष वैद्य

भारत एक चुनौतीपूर्ण चौराहे पर खड़ा है। रूस से तेल आयात करने को लेकर अमेरिका और यूरोपीय संघ द्वारा बार-बार प्रतिबंध लगाने की न केवल बातें की गई बल्कि ईयू द्वारा भारत के दूसरे सबसे बड़े ऑयल रिफाइनरी पर प्रतिबंध लगा दिया गया, तो वहीं 30 जुलाई तक अमेरिका और भारत के बीच प्रस्तावित ट्रेड डील नहीं हो सकी, इसके साथ ही अमेरिकी सीनेट में प्रस्तावित एक विधेयक, जिसमें रूसी तेल आयात करने वाले देशों पर 500% टैरिफ लगाने की बात कही गई, उसने भारत की ऊर्जा सुरक्षा पर एक लंबी छाया डाल दी है। लगभग आधा तेल अब रूस से आने के कारण, भारत को आर्थिक व्यावहारिकता और भू-राजनीतिक गठबंधन के बीच चयन करने के लिए मजबूर होना पड़ सकता है।

लेकिन क्या यह वास्तव में एक द्विआधारी विकल्प है? या भारत के पास अभी भी कूटनीति, विविधीकरण और गहरे रणनीतिक सोच के माध्यम से पैंतरेबाज़ी करने की गुंजाइश है?

रूस से भारत का तेल आयात लागत और निरंतरता द्वारा निर्देशित किया गया है। 2022 की शुरुआत से, मध्य पूर्वी कच्चे तेल की तुलना में $7-8 सस्ता व्यापार करने वाले रूसी तेल ने भारत को ऊर्जा-संचालित मुद्रास्फीति से अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने में मदद की है। अप्रैल 2024 से फरवरी 2025 तक की अवधि को कवर करने वाली आईसीआरए की रिपोर्ट के अनुसार, भारत ने रियायती रूसी कच्चे तेल खरीदकर अपने तेल आयात बिल पर लगभग $7.9 बिलियन बचाए, जो पिछले वित्तीय वर्ष में $5.1 बिलियन से उल्लेखनीय वृद्धि है।

फिर भी वाशिंगटन में, इस व्यावहारिक गणना को भू-राजनीतिक लेंस के माध्यम से देखा जाता है। सीनेटर लिंडसे ग्राहम द्वारा प्रायोजित 2025 के 'सेंक्शनिंग रशिया एक्ट' का मसौदा, अमेरिका की युद्ध प्राथमिकताओं को उन देशों को दंडित करके वैश्वीकृत करने का प्रयास करता है जो उसकी प्रतिबंध व्यवस्था के साथ संरेखित नहीं हैं। भारत के लिए, हालांकि, रणनीतिक स्वायत्तता का मतलब कभी भी निष्क्रिय तटस्थता नहीं रहा है। इसका अर्थ है स्वतंत्र नीति अंशांकन, जो क्षणिक बाहरी दबाव के बजाय दीर्घकालिक राष्ट्रीय हित द्वारा निर्देशित है।

हालांकि नई दिल्ली ने सार्वजनिक रूप से सीधे टकराव से परहेज किया है, भारतीय अधिकारियों ने रूसी तेल आयात जारी रखने के पीछे के तर्क को समझाने के लिए अमेरिकी सांसदों के साथ चुपचाप बातचीत की है। विदेश मंत्री एस. जयशंकर की यह टिप्पणी कि भारत 'जब वह पुल आएगा तो उसे पार कर लेगा' ने विभिन्न व्याख्याएं खींची हैं, कुछ इसे परिकलित अस्पष्टता के रूप में देखते हैं, अन्य

यह प्रस्तावित टैरिफ केवल ऊर्जा तक सीमित नहीं, बल्कि एक व्यापारिक हथियार है। अमेरिका को भारत का 80-90 अरब डॉलर का निर्यात, जिसमें फार्मा, इंजीनियरिंग और ऑटो पार्ट्स जैसे क्षेत्र शामिल हैं, खतरे में है। अगर भारत को सस्ती ऊर्जा के लिए दंडित किया गया, तो अमेरिका के साथ रक्षा और तकनीक जैसे क्षेत्रों में सहयोग कमजोर हो सकता है। क्या रणनीतिक साझेदारी, आर्थिक दबाव के साथ कायम रह सकती है?

इसे एक रणनीतिक स्थानधारक के रूप में। किसी भी तरह से, यह एक राजनयिक मुद्रा को दर्शाता है जिसे तीव्र बाहरी दबाव के बीच लचीलापन बनाए रखने के लिए डिज़ाइन किया गया है।

भारत ने अक्सर $60 प्रति बैरल की G7-लगाई मूल्य सीमा से नीचे रूसी तेल खरीदा है, जिससे पश्चिमी शिपिंग और बीमा सेवाओं तक निरंतर पहुंच संभव हो पाई है। फिर भी, नई दिल्ली का कहना है कि यह औपचारिक रूप से सीमा से बंधा नहीं है और इसके ऊर्जा व्यापार निर्णय एकतरफा पश्चिमी प्रतिबंधों के साथ संरेखण से नहीं, बल्कि राष्ट्रीय हित द्वारा निर्देशित होते हैं।

हालांकि, अमेरिकी सीनेट में विधेयक के लिए समर्थन बढ़ने के साथ, भारत का राजनयिक स्थान सिकुड़ सकता है, यूक्रेन के लिए स्पष्ट समर्थन प्रदर्शित करने या भारी आर्थिक परिणामों का सामना करने के खतरे के साथ बढ़ते दबाव के साथ। बढ़ने से रोकने के लिए, भारत को रणनीतिक संदेश, आत्मविश्वास-निर्माण संकेतों और अनुकूलन के लिए तत्परता के संयोजन के साथ अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की आवश्यकता हो सकती है, बिना मजबूर किए दिखाई देने के। यह एक अच्छी राजनयिक रेखा है, लेकिन एक ऐसी रेखा है जिसे भारत विशिष्ट रूप से चलने के लिए सुसज्जित है।

एक टैरिफ जो तेल से परे फैलता है

प्रस्तावित टैरिफ केवल एक ऊर्जा उपकरण नहीं है; यह एक व्यापार हथियार है। अमेरिका को भारत का वार्षिक निर्यात $80-90 बिलियन है। 500% लेवी लगाने से फार्मास्यूटिकल्स, इंजीनियरिंग सामान,

ऑटो कंपोनेंट्स और टेक्सटाइल्स जैसे प्रमुख क्षेत्र पंगु हो जाएंगे, जिनमें से कई अप्रत्यक्ष रूप से तेल से प्राप्त इनपुट से जुड़े हुए हैं।

विश्लेषकों का मानना है कि अमेरिका जाने वाले भारत के निर्यात का एक महत्वपूर्ण हिस्सा, विशेष रूप से रसायन, धातु, इलेक्ट्रॉनिक्स और ऑटो घटकों जैसे ऊर्जा-गहन क्षेत्रों में, इस तरह के टैरिफ शासन के तहत असमान नुकसान का सामना करना पड़ सकता है।

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता हैः क्या रणनीतिक साझेदारी आर्थिक जबरदस्ती के साथ सह-अस्तित्व में हो सकती है? यदि भारत को सस्ती ऊर्जा प्राप्त करने के लिए दंडित किया जाता है, तो इंडो-पैसिफिक, रक्षा, सेमीकंडक्टर और प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में व्यापक भारत-अमेरिका सहयोग की विश्वसनीयता कमजोर हो जाएगी। जोखिम यह है कि आज सामरिक दबाव कल संरचनात्मक विश्वास को कम कर सकता है।

ऊर्जा रक्षा को मजबूत करना

इसलिए भारत को कई मोर्चों पर तैयारी करनी चाहिए। वाशिंगटन में राजनयिक जुड़ाव जारी रहने के दौरान, इसे संभावित झटकों का प्रबंधन करने के लिए आंतरिक सुरक्षा उपायों को भी मजबूत करना होगा। इसमें तेल स्रोतों का विविधीकरण, विशेष रूप से खाड़ी उत्पादकों और अफ्रीका से तेजी लाना और रणनीतिक पेट्रोलियम भंडार (SPR) का विस्तार करना शामिल है, जो पहले से ही सरकार के विचाराधीन है। अर्थव्यवस्था की समग्र तेल तीव्रता और दीर्घकालिक भेद्यता को कम करने के लिए स्वच्छ ऊर्जा संक्रमण को तेजी से ट्रैक करने की आवश्यकता भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।

कानूनी उपकरणों को भी काम में लाया जा सकता है। भारत ने अमेरिकी ऑटो टैरिफ पर परामर्श की मांग करते हुए और स्टील और एल्यूमीनियम पर जवाबी शुल्क प्रस्तावित करते हुए डब्ल्यूटीओ तंत्र का आह्वान किया है, ऐसे कदम जिन्हें उसने स्पष्ट किया है कि चल रही व्यापार वार्ता को बाधित नहीं करेंगे। फिर भी, किसी भी कानूनी प्रतिक्रिया को बढ़ने से बचने के लिए कड़ा किया जाना चाहिए। अतीत का अनुभव सावधानी बरतता हैः 2016 के अमेरिका-भारत सौर पैनल विवाद ने अंतिम अनुपालन लाया, लेकिन केवल सीमित अल्पकालिक राहत, भारत ने प्रारंभिक फैसले के वर्षों बाद विवादास्पद नीतियों को समाप्त कर दिया। डब्ल्यूटीओ न्यायनिर्णय, जबकि सैद्धांतिक रूप से, अक्सर तत्काल आर्थिक दबाव को कम करने के लिए बहुत धीरे-धीरे परिणाम देता है।

संतुलनकारी कार्य

भारत की पसंद आज न केवल वाशिंगटन में, बल्कि मास्को में भी गूंजेगी। रूस ने लंबे समय से भारत को रक्षा, ऊर्जा और अंतरिक्ष में एक विश्वसनीय रणनीतिक भागीदार माना है। यदि भारत अमेरिकी दबाव में रूसी तेल आयात को कम करता हुआ दिखाई देता है, तो यह परिणाम आमंत्रित कर सकता हैः अधिक महंगे अनुबंध, तंग वित्तपोषण और द्विपक्षीय वार्ता में कम लाभ। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह संभावित रूप से उस राजनीतिक सद्भावना को मिटा सकता है जिसने लंबे समय से उनके स्थिर संबंधों को बांधे रखा है।

फिर भी भारत और रूस दोनों ही वाशिंगटन में बदलती राजनीतिक हवाओं से अच्छी तरह वाकिफ हैं। 2026 के अमेरिकी मध्यावधि चुनावों के आने के साथ, और ट्रम्प के कांग्रेस समर्थन की स्थायित्व को लेकर अनिश्चितता के साथ, दोनों देश अपरिवर्तनीय निर्णयों में जल्दबाजी करने के बजाय समय खरीदना पसंद कर सकते हैं। एक संभावित चुनावी झटका 'सेंक्शनिंग रशिया एक्ट' के पीछे विधायी गति को कमजोर कर सकता है, जिससे वाशिंगटन को अपनी रणनीति को पुनर्गणना करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

रूस की अपनी सावधानी को दर्शाते हुए, उप विदेश मंत्री सर्गेई रयाबकोव ने टीएएसएस को दिए एक बयान में कहा, 'ट्रम्प प्रशासन अपने कार्यों और बयानों में बहुत विरोधाभासी है। यह काम को आसान नहीं बनाता है।' भारत के लिए, यह क्षण टकराव से कम, रणनीतिक धैर्य के बारे में हो सकता है, दीर्घकालिक स्वायत्तता की रक्षा करते हुए दोनों शक्तियों के साथ जुड़ाव को संतुलित करना।

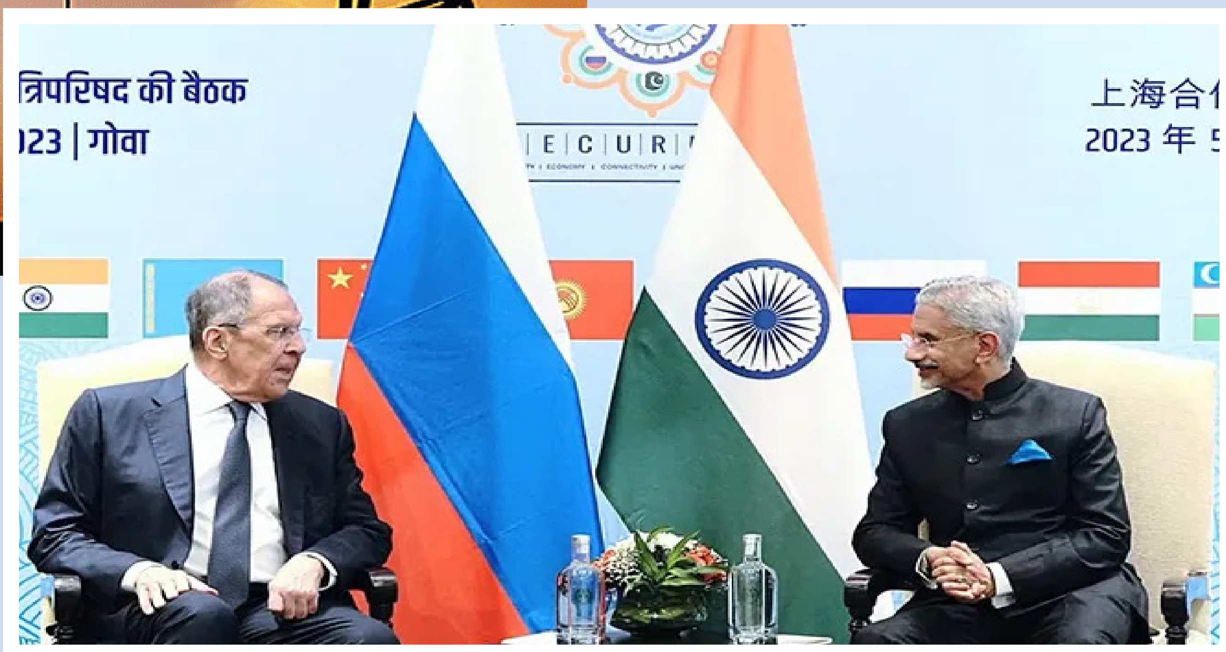

फिर भी, अमेरिकी कानून की अवहेलना करते हुए रूसी तेल खरीदना जारी रखने से भारत के लिए जोखिम हैं, खासकर नाजुक लेकिन गहरे भारत-अमेरिका साझेदारी के लिए। वाशिंगटन प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, नियरशोरिंग और क्वाड जैसे रणनीतिक ढांचे के माध्यम से भारत के उदय में भारी निवेश कर रहा है। चिंता तत्काल प्रतिबंधों के बारे में कम है और व्यापक द्विपक्षीय सहयोग में गति के संभावित नुकसान के बारे में अधिक है।

रणनीतिक स्वायत्तता

500% टैरिफ खतरा सिर्फ एक नीति लीवर से अधिक है, यह भारत की आर्थिक संप्रभुता, राजनयिक चपलता और वैश्विक रुख की लिटमस टेस्ट है। भारत को अपने ऊर्जा निर्णयों का बचाव अवज्ञा के साथ नहीं, बल्कि जानबूझकर डिजाइन के साथ करना चाहिएः स्तरित कूटनीति, संरचनात्मक सुधार और विकास-संचालित तर्क के स्पष्ट उच्चारण के माध्यम से। इस संदर्भ में, भारत पक्ष नहीं चुन रहा है; यह अपनी जमीन चुन रहा है। यह द्विआधारी संरेखण में खींचे बिना वाशिंगटन और मास्को दोनों के साथ विश्वसनीय संबंध बनाए रखना चाहता है। इस अर्थ में रणनीतिक स्वायत्तता अलगाव के बारे में नहीं है, यह संतुलन, लचीलापन और परिणाम-संवेदनशील स्थिति के बारे में है।

यदि वाशिंगटन भारत को एक स्थायी लोकतांत्रिक भागीदार के रूप में बनाए रखने की उम्मीद करता है, तो उसे यह पहचानना चाहिए कि जबरदस्ती की रणनीति प्रतिकूल साबित हो सकती है, भारत को वैकल्पिक आपूर्तिकर्ताओं और भू-राजनीतिक संरेखणों की ओर धकेल सकती है, जिसमें भविष्य के जोखिमों से बचाने के प्रयास में, यदि आवश्यक हो तो चीन भी शामिल है।

यदि अमेरिका भारत को सिर्फ एक सुविधाजनक काउंटरवेट नहीं, बल्कि एक सच्चे रणनीतिक भागीदार के रूप में देखता है, तो उसे इन जटिलताओं को स्वीकार करना चाहिए और लचीलापन दिखाना चाहिए। साथ ही, यदि भारत बाहरी निर्भरता के बिना उठना चाहता है, तो उसे बढ़ते दबाव के सामने अवशोषित करने, विक्षेपित करने और पुनर्गणना करने की अपनी क्षमता को और तेज करना चाहिए। •

लेखक ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के जूनियर फेलो हैं, रणनीतिक ऊर्जा अंतर्दृष्टि और हरित संक्रमण में अनुसंधान रुचि रखते हैं। यह आलेख आरटी न्यूज से साभार लिया गया है।

ताइवान पर तकरार

क्यों आई दोस्ती में दरार

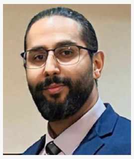

डॉन मैकलेन गिल

ताइवान संघर्ष में सहयोगी देशों की भूमिका पर ट्रंप प्रशासन ने जो सवाल उठाए हैं, वे सही हैं। इसके बावजूद अमेरिका सरकार के लेन-देन संबंधी दृष्टिकोण से हिंद-प्रशांत क्षेत्र में विश्वसनीय आकस्मिक योजना के असफल होने का ख़तरा है। ट्रंप प्रशासन के रुख़ से इस योजना के लिए ज़रूरी राजनीतिक विश्वास पैदा नहीं हो पा रहा है।

13 जुलाई 2025 को फाइनेंशियल टाइम्स ने ताइवान पर अमेरिका और चीन के बीच जारी तनाव को लेकर एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट के मुताबिक अमेरिका के रक्षा नीति उप सचिव एल्ड्रिज कोल्बी ने वाशिंगटन के प्रमुख इंडो-पैसिफिक सहयोगियों, विशेष रूप से ऑस्ट्रेलिया और जापान के अधिकारियों से बात की। कोल्बी ने ताइवान पर अमेरिका-चीन गोलीबारी युद्ध की स्थिति में अपनी स्थिति स्पष्ट करने और इन देशों के मनाने की कोशिश की। ज़ाहिर है फिलहाल ये दोनों सहयोगी देश कोई सीधा जवाब देने से बचते रहे। ऐसी आकस्मिक परिस्थितियों से निपटने के लिए मज़बूत राजनीतिक प्रतिबद्धता और सहयोगियों के बीच विश्वास निर्माण की आवश्यकता होती है। हालांकि, ट्रंप

प्रशासन अपने हिंद-प्रशांत क्षेत्र के सहयोगियों को सही संकेत नहीं दे रहा है।

ताइवान पर कब हमला कर सकता है चीन?

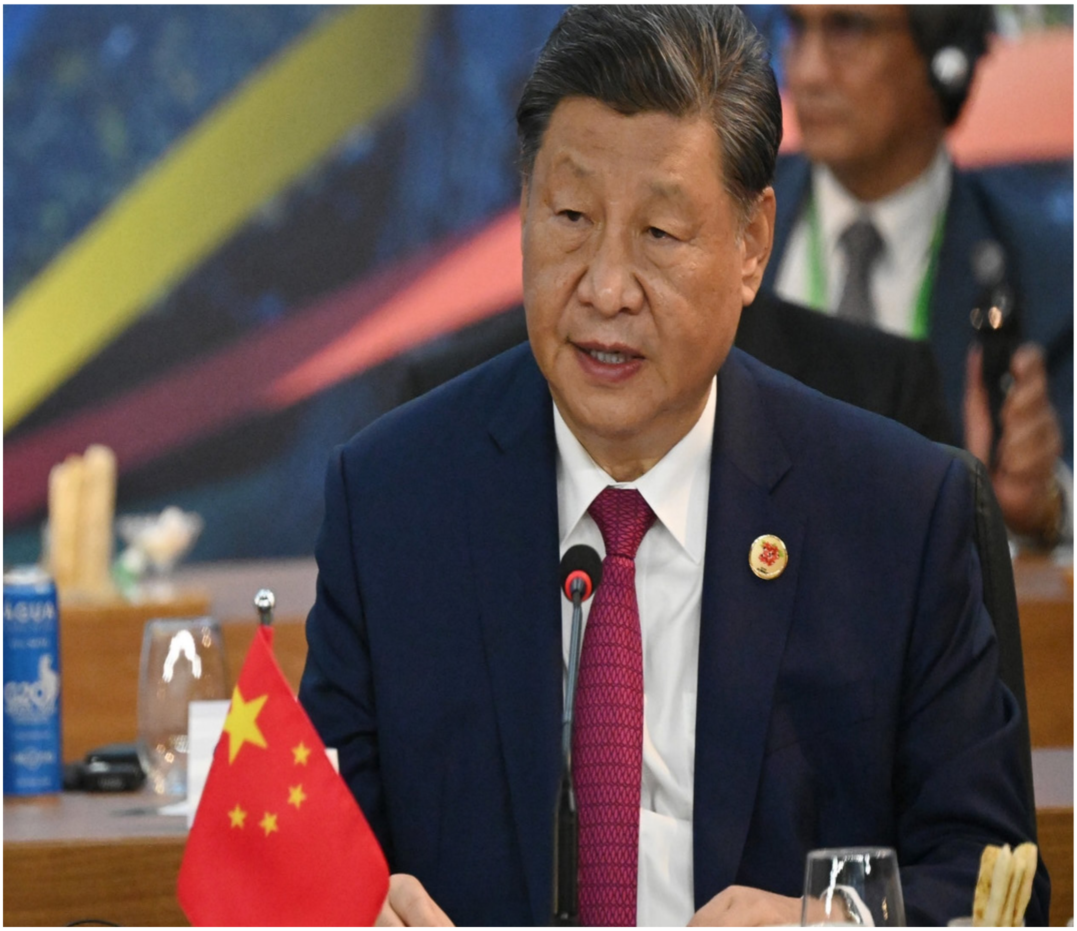

अब सवाल ये कि क्या चीन का इरादा ताइवान पर हमला करने का है? और अगर आक्रमण करेगा तो कब? ये गहन अटकलों का विषय है। हालांकि, जिस एक स्पष्ट 'समय सीमा' पर अक्सर बात की जाती है, वो है 2027। ये वर्ष पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) की स्थापना की 100वीं वर्षगांठ के साथ मेल खाता है। राष्ट्रपति शी जिनपिंग इस अवधि को वो समय मानते हैं, जब चीन अपनी 'राष्ट्रीय संप्रभुता, सुरक्षा और विकास हितों की रक्षा के लिए रणनीतिक क्षमताओं' में व्यापक सुधार कर चुका होगा। ट्रंप प्रशासन भी इस समय सीमा को गंभीरता से लेता दिख रहा है। इसके संकेत 2021 में पूर्व अमेरिकी इंडो-पैसिफिक कमांड एडमिरल फिलिप डेविडसन द्वारा दी गई चेतावनी से मिला था। तब उन्होंने कहा था कि चीन 2027 तक ताइवान को लेकर कुछ ना कुछ बड़ा कदम उठाएगा। इस चेतावनी को 'डेविडसन विंडो' भी कहा जाता है।

ऐसे में अगर ताइवान को लेकर अमेरिका और चीन युद्ध में उलझ जाते हैं, तो वॉशिंगटन की कोशिश पश्चिमी प्रशांत क्षेत्र में अपने गठबंधन नेटवर्क का लाभ उठाने की होगी। हालांकि, पिछले कुछ हफ़्तों में इस हब-एंड-स्पोक नेटवर्क में खामियां उजागर हुई हैं, खासकर ट्रम्प प्रशासन के दौरान। ट्रंप के कार्यकाल में अपने प्रमुख पश्चिमी प्रशांत सहयोगियों-जापान और ऑस्ट्रेलिया-के प्रति अमेरिका का रवैया लापरवाह किस्म का रहा है।

सबसे पहले ये बात बतानी ज़रूरी है कि हालांकि, अमेरिका के जापान और ऑस्ट्रेलिया के साथ द्विपक्षीय संधि गठबंधन है, लेकिन इस संधि में अस्पष्टताएं भी हैं। इनमें से किसी भी सहयोगी की वॉशिंगटन के साथ सुरक्षा संधि कानूनी रूप से और स्पष्ट रूप से उन्हें

किसी ऐसे संघर्ष में सैन्य भूमिका के लिए प्रतिबद्ध नहीं करती है, जिसमें उनके प्रशासन के अधीन क्षेत्र पर सीधा हमला शामिल न हो। हालांकि, संधियों में जो लिखा गया है, उसमें कुछ ऐसी बारीकियां हैं, जिन्हें समझना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, अमेरिका-जापान रक्षा संधि के अनुच्छेद-VI में कहा गया है कि टोक्यो क्षेत्रीय स्थिरता में योगदान के लिए जापानी धरती पर अमेरिकी सेना की तैनाती को स्वीकार और समर्थन करेगा। हालांकि, इसमें जापान की रक्षा के अलावा जापान आत्मरक्षा बल (जेएसडीएफ) की सक्रिय भागीदारी का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इसी तरह, ऑस्ट्रेलिया ने 1951 में अमेरिका के साथ जो संधि की है, वो 'साझा ख़तरे' के संदर्भ में आपसी परामर्श के इर्द-गिर्द घूमती है।

अमेरिका की किन नीतियों से निराश हैं ऑस्ट्रेलिया-जापान?

फिर भी, संधियों में किसी स्पष्ट कानूनी दायित्व के अभाव का अर्थ ये नहीं है कि किसी आकस्मिक स्थिति में संभावित सहयोगी कार्रवाई संभव नहीं है। ऐसी ही परिस्थिति में राजनीतिक नेतृत्व, अंतर-राज्यीय समन्वय और विश्वास-निर्माण इन कमियों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जापान ने पिछले कुछ वर्षों में अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा क्षमताओं को बढ़ाने के लिए नए प्रयास किए हैं। इसके बावजूद वहां के रक्षा मामलों के जानकार ये भी कबूल करते हैं कि ताइवान पर हमले का जापान पर सीधा प्रभाव पड़ेगा, खासकर उस स्थिति में जब चीन की सेना जापान में अमेरिकी ठिकानों को निशाना बनाने की कोशिश करे। 2022 में, जापान के तत्कालीन प्रधानमंत्री शिंजो आबे ने अमेरिका से ताइवान को लेकर अपनी 'रणनीतिक अस्पष्टता' छोड़ने का आह्वान किया था। दूसरी ओर, ऑस्ट्रेलिया का रुख़ ज़्यादा संयमित रहा है। इसकी वजह ये है कि ऑस्ट्रेलिया के चीन के साथ व्यापक व्यापारिक संबंध हैं। हालांकि, इसके साथ ही ऑस्ट्रेलिया को भी इस बात का एहसास है कि ताइवान पर चीन का आक्रमण सिर्फ़ उस भौगोलिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रह सकता। वैसे भी चीन ने पिछले चार साल में ऑस्ट्रेलिया के ख़िलाफ़ अपनी उत्तेजक और आक्रामक कार्रवाइयों को बढ़ा दिया है।

हालांकि अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया के बीच आकस्मिक योजना बनाना बेहद ज़रूरी है, लेकिन वाशिंगटन अपने सहयोगियों के साथ इस तरह के एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए सही परिस्थितियां तैयार नहीं कर पाया है। दरअसल, ट्रंप प्रशासन का ज़्यादा ध्यान फिलहाल व्यापार और टैरिफ पर है। अमेरिका ने अपने सहयोगियों के साथ अनुचित संरक्षक-ग्राहक संबंधों की शर्तों पर फिर से बातचीत करके अपनी ताकत का खुलकर प्रदर्शन किया है। ये बात तब और स्पष्ट हुई, जब ट्रंप प्रशासन ने हिंद-प्रशांत क्षेत्र के सहयोगी देशों से अपने रक्षा

खर्च को सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के पांच प्रतिशत तक बढ़ाने की मांग की। अमेरिका की ये आदेशनुमा सलाह ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया और विशेष रूप से जापान को नापसंद है। ट्रंप प्रशासन शायद ऑस्ट्रेलिया-ब्रिटेन-अमेरिका (एयूकेयूएस) समझौते की समीक्षा को भी आगे बढ़ाएगा। इससे ऑस्ट्रेलियाई नीति निर्माताओं में अनिश्चितता की स्थिति और बढ़ जाएगी। आर्थिक मोर्चे पर, ट्रंप के दूसरे कार्यकाल की शुरुआत में अमेरिकी प्रशासन द्वारा 'पारस्परिक शुल्क' (रेसिप्रोकेल टैक्स) लगाने के फैसले के बाद एक अंधाधुंध व्यापार युद्ध छिड़ गया है। अमेरिका के साथ जापान एक न्यायसंगत व्यापार समझौता नहीं कर सका। इसे देखते हुए ट्रंप ने हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अमेरिका के सबसे महत्वपूर्ण सहयोगी यानी जापान पर 25 प्रतिशत टैरिफ लगाया। इतना ही नहीं व्यापार समझौते के लिए अपनी शर्तों को पेश ना करने के कारण ट्रंप प्रशासन ने इसे 'खराब' कहा।

क्या ट्रंप प्रशासन अपने रुख़ में लाएगा बदलाव?

हालांकि, अमेरिका हिंद-प्रशांत क्षेत्र में महत्वपूर्ण सैन्य और आर्थिक शक्ति रखता है, लेकिन ट्रंप प्रशासन को अपने प्रमुख क्षेत्रीय सहयोगियों को साथ मिलकर चलना होगा। अगर अमेरिका उनके साथ समान शर्तों पर काम करने की आवश्यकता को समझने में असफल रहता है तो इस क्षेत्र में किसी भी गंभीर संघर्ष का एकजुट जवाब देने में चुनौतियां पैदा होंगी। ट्रंप की रक्षा अपेक्षाओं और आर्थिक मांगों के बीच एकीकृत योजना का अभाव समन्वय में बाधा डालता है। हालांकि, जापान और ऑस्ट्रेलिया दोनों ही ताइवान पर चीनी आक्रमण के परिणामों से अच्छी तरह वाकिफ हैं, लेकिन अमेरिका का रवैया भी उन्हें निराश कर रहा है। इसके अलावा, ये भी एक तथ्य है ताइवान की रक्षा के संबंध में अमेरिका का रुख़ भी स्पष्ट नहीं है। ऐसे में हिंद-प्रशांत की क्षेत्रीय गतिशीलता की अनिश्चितताओं को देखते हुए प्रमुख सहयोगियों के लिए भी ताइवान की रक्षा को लेकर स्पष्ट रूप से प्रतिबद्ध होना और भी चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

हब-एंड-स्पोक नेटवर्क के सभी सदस्य देश ताइवान जलडमरूमध्य में किसी भी संघर्ष की स्थिति के लिए आकस्मिक योजना बनाने की ज़रूरत को समझते हैं। हालांकि, इसके साथ ही अमेरिका को अपने कूटनीतिक दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करना होगा। ट्रंप प्रशासन को ये स्वीकार करना होगा कि किसी भी सफल सहयोगी प्रतिक्रिया का आधार कोई लिखित संधि दायित्व के बजाए सामूहिक राजनीतिक इच्छाशक्ति होती है। अगर अमेरिका इस क्षेत्र में किसी सामूहिक कार्ययोजना को क्रियान्वित करना चाहता है, तो उसे हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अपने सहयोगियों के साथ अपने संबंधों की फिर से समीक्षा करनी होगी। •

लेखक फिलीपींस में भू-राजनीतिक विश्लेषक और लेखक हैं। वो डे ला सैले यूनिवर्सिटी में इंटरनेशनल स्टडीज़ डिपार्टमेंट में लेक्चरर भी हैं।

BMD का सवाल सुरक्षा या सर्वनाश?

कार्तिक बोम्माकांति

भारत को वर्तमान में अपनी बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा (**BMD**) प्रणाली को विकसित करने के लिए गंभीर और ठोस प्रयास करने की ज़रूरत है। जिस प्रकार से चीन अपनी बीएमडी क्षमताओं को बढ़ा रहा है और परमाणु कवच को मज़बूत कर रहा है, ऐसे बदलते हालातों में किसी भी युद्ध के दौरान संतुलन स्थापित करके के लिहाज़ से भारत के लिए ऐसा करना रणनीतिक तौर पर बेहद आवश्यक है।

भारत के दोनों पड़ोसी देश परमाणु ताक़त से लैस हैं और उनके साथ भारत के रिश्ते भी बहुत अच्छे नहीं हैं। इन हालातों में भारत के लिए अपनी सुरक्षा के लिहाज़ से उन्नत बैलिस्टिक मिसाइल डिफेंस (BMD) होना बेहद अहम है। एक और अहम बात यह भी है कि जिस तरह से चीन लगातार विकसित BMD क्षमताएं हासिल कर रहा है, इसके बाद तो भारत के लिए बैलिस्टिक मिसाइल डिफेंस क्षमता हासिल करना और भी ज़रूरी हो जाता है। पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना (PRC) ने अपनी रक्षा क्षमता में ज़बरदस्त छलांग लगाते हुए HQ-29 नाम की एक नई बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा प्रणाली विकसित की है और ज़ल्द ही वो इसे आधिकारिक रूप से अपनी सेना का हिस्सा बनाने की तरफ बढ़ रहा है। माना जा रहा है कि चीन की HQ-29 बीएमडी प्रणाली उसकी HQ-19 BMD प्रणाली से अधिक उन्नत है और यह काफ़ी कुछ अमेरिका की बैलिस्टिक मिसाइल डिफेंस प्रणाली THAAD यानी थिएटर हाई एल्टीट्यूड एरिया डिफेंस प्रणाली जैसी है। ज़ाहिर है कि चीन के पास फिलहाल जो भी बहु-स्तरीय मिसाइल रक्षा प्रणालियां मौज़ूद हैं उनमें HQ-29 बीएमडी सिस्टम सबसे उन्नत है और इसकी मारक क्षमता बहुत ज़्यादा है। इस बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा प्रणाली को इस प्रकार तैयार किया गया है कि यह हाई-एंड बैलिस्टिक मिसाइलों का पता लगाने और उन्हें समाप्त

करने में सक्षम होगी, साथ ही पृथ्वी के वायुमंडल के बाहर बैलिस्टिक मिसाइलों को बीच रास्ते में रोकने और उन्हें नष्ट करने में भी सक्षम होगी। चीन का HQ-29 इंटरसेप्टर ज़ाहिर तौर पर हमलों को रोकने के मकसद से तैयार किया गया है, यानी इसे विकसित करने का मुख्य उद्देश्य उपग्रह युद्ध और हाइपरसोनिक हमलों को रोकना है। चीन के पास पहले से HQ-19 बीएमडी सिस्टम मौजूद है, जिसे भारत की अग्नि-V जैसी मध्यम दूरी की बैलिस्टिक मिसाइलों (IRBMs) को बीच रास्ते में नष्ट करने के लिए विकसित किया गया है और तैनात किया है। चीन की ओर से अपनी HQ-19 BMD प्रणाली को पहले ही मंगोलिया के जिलनताई में तैनात किया जा चुका है। इसके बाद, चीन ने अब जिस HQ-29 बीएमडी प्रणाली को विकसित किया है, उससे चीन की रक्षा क्षमता में काफ़ी वृद्धि होगी और इसके बल पर चीन की पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (PLA) अपने महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचों और अपने अधिकार वाले इलाक़ों की रक्षा करने में सक्षम होगी।

भारत के कुछ चोटी के परमाणु विशेषज्ञों का मानना है कि भारत को अपनी खुद की बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा (BMD) प्रणाली विकसित करने और उसे तैनात करने की ज़रूरत है। उनका कहना है कि देश के हवाई ठिकानों, परमाणु प्रतिष्ठानों, पनडुब्बी ठिकानों और सैन्य कमांड, नियंत्रण एवं संचार केंद्रों को निशाना बनाने वाले दुश्मन के परमाणु मिसाइल हमले से सुरक्षित रखने के लिए बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा प्रणाली को प्रमुखता के आधार पर तैनात करने की ज़रूरत है। हालांकि, उनका यह भी कहना है कि शहरों और कस्बों को ऐसे हमलों से बचाने के लिए इस प्रणाली को तैनात करने की फिलहाल ऐसी कोई ख़ास ज़रूरत नहीं है। ज़ाहिर है कि अगर देश में बड़े शहरों को सुरक्षित रखने के लिए ऐसी रक्षा प्रणाली को तैनात किया जाता है, तो इसकी लागत बहुत अधिक होगी। देखा जाए तो तीन प्रमुख वजहों से भारत में बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा से जुड़ी क्षमताओं में बढ़ोतरी की ज़रूरत जताई गई है। ख़ास तौर पर जिस प्रकार से चीन लगातार अपनी रक्षा क्षमताओं को बढ़ा रहा है और पारंपरिक एवं परमाणु दोनों तरह के हमलों के लिहाज़ से अपनी ताक़त में वृद्धि कर रहा है, उन हालातों में जितनी ज़्यादा से ज़्यादा आबादी को मिसाइल डिफेंस के दायरे में लाया जा सकता है, उसके लिए ठोस प्रयास करना चाहिए।

बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा क्षमताओं को बढ़ाने की वजह

भारत की अपनी बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा क्षमताओं को बढ़ाने के पीछे जो सबसे पहली वजह है, वो है कि भारत की एश्योर्ड डिस्ट्रिक्शन (AD) यानी सुनिश्चित विनाश या एश्योर्ड रिटैलिएशन (AR) यानी सुनिश्चित प्रतिशोध की रणनीति। भारत की यह रणनीति परमाणु हमले के ख़तरों, विशेष रूप से चीन की ओर से संभावित पर परमाणु ख़तरों को रोकने के लिहाज़ से पर्याप्त नहीं है। भारत की नो फर्स्ट यूज़ (NFU) पॉलिसी यानी पहले परमाणु हथियार इस्तेमाल नहीं करने की नीति के मद्देनज़र भारत के पास एक उन्नत बैलिस्टिक मिसाइल डिफेंस प्रणाली होना बेहद आवश्यक है। ऐसे इसलिए है, क्योंकि एनएफयू नीति के तहत भारत जवाबी कार्रवाई तभी करेगा जब उस पर कोई दुश्मन देश उस पर परमाणु हमला करेगा। यानी दुश्मन के परमाणु हमले को रोकने के लिए विकसित मिसाइल रक्षा प्रणाली बेहद आवश्यक है। ज़ाहिर है कि जब कोई दुश्मन देश पहले परमाणु हमला करेगा, तो यह डीकैपिटेशन स्ट्राइक हो सकती है, यानी ऐसा हमला हो सकता है, जिसमें भारत को सैन्य लिहाज़ के ख़ासा नुक़सान उठाना पड़ सकता है। जहां तक चीन की बात है, तो नो फर्स्ट यूज़ की उसकी अपनी नीति कतई स्पष्ट नहीं है। गौर करने वाली बात यह भी है कि चीन की एनएफयू नीति को लेकर किए गए कुछ गहन विश्लेषणों में यह सामने आया है कि परमाणु हथियारों के इस्तेमाल को लेकर चीन अपनी नो फर्स्ट यूज़ पॉलिसी के तहत सैद्धांतिक रूप से जितनी प्रतिबद्धता जताता है, उसको लेकर वो उतना दृढ़ नज़र नहीं आता है। ख़ास तौर पर अगर दुश्मन देश पारंपरिक हथियारों से चीन के परमाणु ठिकानों हमला करता है, उस स्थिति में चीन निश्चित तौर पर अपनी इस नीति पर अमल नहीं करेगा। इतना ही नहीं, जिस प्रकार से चीन चालाकी दिखाते हुए अपनी परमाणु और पारंपरिक सैन्य क्षमताओं को एकीकृत करने में जुटा हुआ है, ऐसे में चीन की ओर से परमाणु हथियारों के पहले इस्तेमाल की संभावना और बढ़ जाएगी। क्योंकि चीन की इस रणनीति की वजह से विरोधी देश

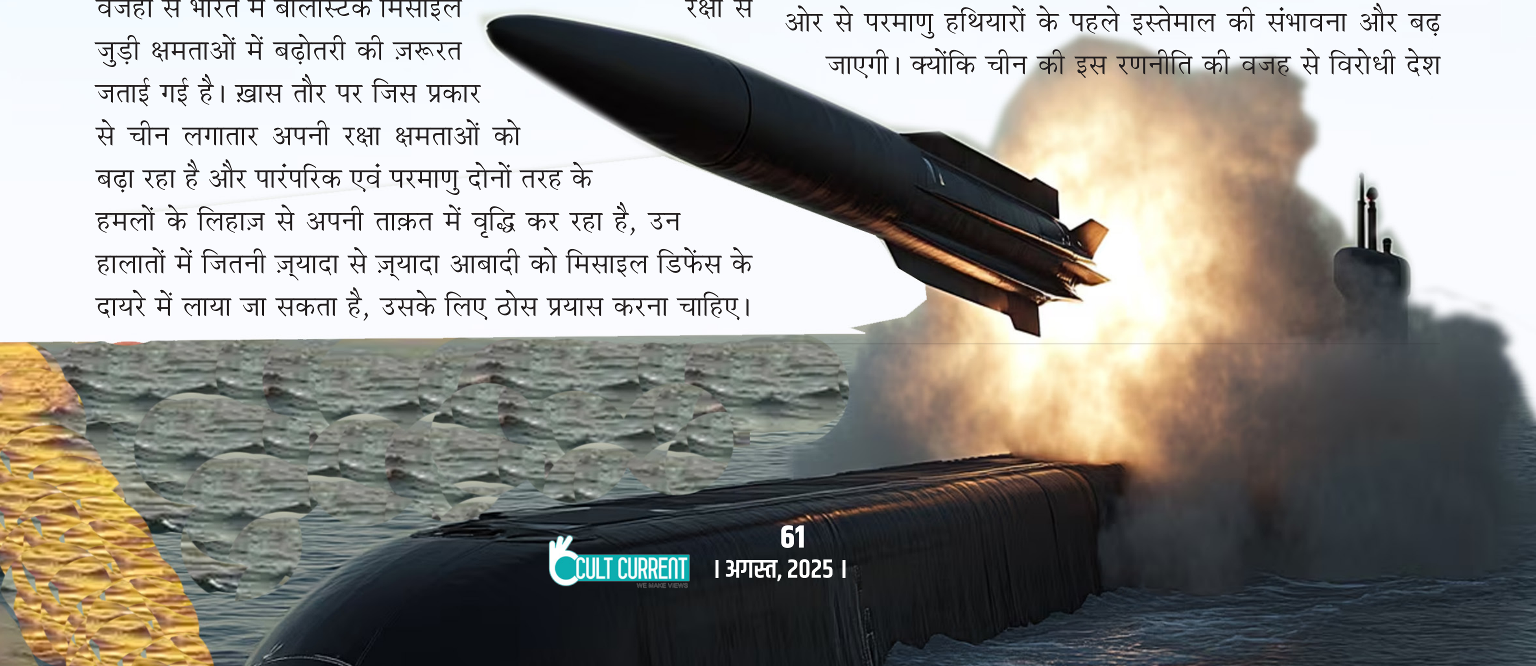

को यह पता ही नहीं चल पाएगा को चीन के पारंपरिक सैन्य ठिकानों को निशाना बना रहा है या फिर उसकी परमाणु क्षमताओं पर लक्ष्य साध रहा है।

इसके अतिरिक्त, चीन को ऐसा लगता है किसी पारंपरिक तरीक़े से लड़े जा रहे युद्ध में अगर उसकी हार संभावित है, तो उन हालातों में वो कम से कम सीमित परमाणु हमला कर सकता है। देखा जाए तो चीन का यह सीमित परमाणु हमला भारत के लिए विनाशकारी साबित हो सकता है। इसकी वजह यह है कि भारत के पास चीन की तुलना में परमाणु हथियारों की संख्या बहुत कम है। भारत के पास लगभग 180 परमाणु हथियार हैं, जबकि भारत के दूसरे दुश्मन पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान के पास 170 परमाणु हथियारों का जखीरा है। वहीं अगर चीन की बात की जाए उसके पास लगभग 600 परमाणु हथियारों का भंडार है। इतना ही नहीं चीन तेज़ी से अपने परमाणु हथियारों की संख्या बढ़ाने में लगा हुआ है। यानी उसकी परमाणु हथियारों को हासिल करने की गति दुनिया में किसी भी देश की तुलना में सबसे तेज़ है। युद्ध की परिस्थितियों में अगर भारत की ओर से किए जाने वाले जवाबी ज़मीनी हमलों की प्रतिक्रिया में चीन की तरफ से परमाणु हमला किया जाता है, तो यह न सिर्फ़ ज़मीन पर युद्ध लड़ रही सेना के लिए घातक होगा, बल्कि भारत के हवाई ठिकानों, परमाणु प्रतिष्ठानों और सैन्य मुख्यालयों व सैन्य नियंत्रण केंद्रों के आस-पास स्थित घनी आबादी वाले क्षेत्रों के लिए भी उतना ही विनाशकारी होगा। अगर चीन की बात की जाए तो उसकी बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा प्रणालियां, जैसे कि HQ -19 और नए HQ-29 डिफेंस सिस्टम परमाणु हथियारों से लैस मिलाइलों का हमला रोकने में सक्षम हैं और इनके ख़िलाफ एक मज़बूत रक्षा कवच का काम करती हैं। यही वजह है कि भारत की हर हाल में एश्योर्ड डिस्ट्रक्शन (AD) की नीति पर चलने की प्रतिबद्धता सामरिक और नैतिक दोनों ही नज़रिए से बेहद ख़तरनाक हैं। अमेरिका के पूर्व विदेश मंत्री, पूर्व राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार और जाने माने परमाणु रणनीतिकार स्वर्गीय हेनरी किसिंजर ने म्यूचुअल एश्योर्ड डिस्ट्रक्शन (MAD) या सुनिश्चित विनाश पर आधारित रणनीति अपनाने को लेकर अपने साथी परमाणु रणनीतिकारों से अलग विचार प्रकट करते हुए कहा था कि तत्कालीन सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका (US) AD यानी सुनिश्चित विनाश पर आधारित एक समझौते के ज़रिए अपनी परमाणु प्रतिद्वंद्विता को सही तरीक़े से संभालने में सक्षम थे। ज़ाहिर है कि हेनरी किसिंजर के कार्यकाल में ही सोवियत संघ और अमेरिका के बीच 1972 का एंटी-बैलिस्टिक मिसाइल (ABM) समझौता हुआ था। इसके बावज़ूद, शीत युद्ध के बाद के युग में उन्होंने इस प्रकार की संधि का कड़ा विरोध किया था, क्योंकि तब परमाणु ताक़त से संपन्न राष्ट्रों की संख्या बढ़ रही थी और उनके बीच परमाणु हथियारों का इस्तेमाल करने की संभावनाएं और वजहें भी बहुत बढ़ रही थीं। यानी परमाणु संपन्न राष्ट्रों की ओर से परमाणु हथियारों का इस्तेमाल जानबूझकर कर किया जा सकता था, या फिर अनधिकृत रूप से और अचानक किया जा सकता था। इसीलिए, तब हेनरी किसिंजर ने साफ तौर पर बैलिस्टिक मिसाइल डिफेंस क्षमताओं की ज़रूरत पर बल दिया था, ताकि ऐसे किसी

परमाणु हमले को रोका जा सके।

इसके अलावा, मान लीजिए अगर चीन के परमाणु हमले में अगर भारत की परमाणु ताक़त पूरी तरह समाप्त नहीं होती है और ख़ास तौर पर भारतीय नौसेना की पनडुब्बी से प्रक्षेपित किए जाने वाले परमाणु हथियार बच भी जाते हैं, तो चीन की बैलिस्टिक मिसाइल सुरक्षा प्रणाली भारत की तरफ से दागी जाने वाली इन बची-खुची सबमरीन परमाणु मिसाइलों को आसानी से रोक सकती है। यही वजह है कि MAD या फिर पारस्परिक विनाश पर आधारित रणनीति देखा जाए तो न केवल बेकार और आपत्तिजनक है, बल्कि सामरिक लिहाज़ से इसमें कोई समझदारी नहीं दिखती है। विशेष रूप से भारत जिस प्रकार से वर्तमान में नो फर्स्ट यूज़ (NFU) नीति पर चल रहा है और चीन व पाकिस्तान जैसे परमाणु शक्ति से लैस पड़ोसी देशों के साथ तनावपूर्ण संबंधों के दौर से गुजर रहा है, उनमें नई दिल्ली की तरफ से ऐसी रणनीति को अपनाना किसी भी तरह से उचित नहीं ठहराया जा सकता है। दरअसल, भारत को BMD प्रणाली जैसी उन्नत प्रतिरोधक क्षमता की सबसे अधिक ज़रूरत है, ताकि वह विपरीत हालातों में वायु रक्षा के ज़रिए अपने बड़े शहरों को हमलों से सुरक्षित रख सके।

भारत के लिए अपनी बीएमडी क्षमताओं को बढ़ाने की दूसरी बड़ी वजह यह है कि चीन लगातार अपने देश में बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा प्रणाली को विकसित करने में जुटा हुआ है। इससे पहले हमला करने में चीन को लाभ होगा। इसके अलावा, भारत के ख़िलाफ किसी पारंपरिक युद्ध में अगर चीन पिछड़ता है और नुक़सान की स्थिति में पहुंचता है, तो उसकी विकसित प्रतिरक्षा क्षमताएं उसे पहले परमाणु हमला करने के लिए प्रेरित करेंगी, क्योंकि वह हर तरह से लाभ की स्थिति में होगा। कुल मिलाकर, इससे चीन को अपनी उन्नत घरेलू बीएमडी क्षमताओं से बहुत फायदा है, इससे उसे युद्ध की स्थिति में अपने नुक़सान को कम से कम करने की ताक़त मिलती है। हालांकि, भारत फिलहाल ऐसी स्थिति में नहीं है कि वो चीन की मिसाइल रक्षा प्रणाली की बराबरी कर पाए। लेकिन भारत अगर अपनी बीएमडी प्रणालियों के विकास पर ध्यान केंद्रित करता और इसके लिए ठोस क़दम उठाता है, तो निश्चित तौर पर वह चीन के पहले परमाणु हमला करने के किसी भी मंसूबे को कुचल सकता है और इस प्रकार से संभावित ख़तरों को टाल सकता है।

भारत को अपनी BMD क्षमताओं को क्यों बढ़ाना चाहिए?

इसकी तीसरी वजह चर्चित अमेरिकी परमाणु रणनीतिकार हरमन काह्न के विचार हैं। उन्होंने कहा है कि मिसाइल रक्षा अनुसंधान और विकास (R&D) बेहद अहम है। अगर इस दिशा में ठोस तरीक़े से आगे बढ़ा जाता है, तो इससे तकनीक़ी लाभ मिलने के साथ ही तमाम ऐसे अवसर भी मिल सकते हैं, जो रक्षा विज्ञान और इंजीनियरिंग संस्थानों एवं उनके वैज्ञानिकों व इंजीनियरों को चुनौतीपूर्ण तकनीक़ी और वैज्ञानिक ख़तरों का समाधान तलाशने के लिए प्रेरित करते रहेंगे। ज़ाहिर है कि अगर इस क्षेत्र में अनुसंधान और विकास किया जाता है, तो तमाम उन्नत टेक्नोलॉजियों के बारे में गहन जानकारी उपलब्ध हो सकती है और वो कैसे काम करती हैं, इसके बारे में गहन आंकड़े जुटाए जा सकते हैं। यानी अगर मिसाइल डिफेंस से जुड़े अनुसंधान और विकास पर ध्यान दिया जाता है, साथ ही इसमें निवेश बढ़ाया जाता है, तो मिसाइल डिफेंस सिस्टम के सभी महत्वपूर्ण चरणों यानी बूस्ट, मिड-कोर्स और टर्मिनल फेज में इंटरसेप्टर प्रणालियों की विश्वसनीयता बढ़ेगी। इसके अलावा, इससे सेंसर टेक्नोलॉजियों, रडार प्रणालियों, निर्देशित-ऊर्जा हथियारों, वायुमंडल के बाहर और वायुमंडल के भीतर मिसाइलों का पता लगाने और उन्हें नष्ट करने, साथ ही फ्रेगमेंटेशन वारहेड को समाप्त करने के लिए नई-नई तकनीक़ों को विकसित करने में भी मदद मिलेगी। ज़ाहिर है कि बैलिस्टिक मिसाइल डिफेंस प्रणालियों को मोबाइल ज़मीनी लॉन्चरों, समुद्री प्लेटफार्मों, हवाई इंटरसेप्टर्स और अंतरिक्ष में मौज़ूद ठिकानों पर आसानी से तैनात किया जा सकता है। सबसे अहम और ध्यान देने वाली बात यह है कि अगर भारत मिसाइल डिफेस में अनुसंधान एवं विकास को आगे बढ़ाता है और फिर अपनी विकसित बीएमडी प्रणालियों को रणनीतिक तरीक़े से तैनात करता है, तो इससे प्रतिद्वंदी देश, ख़ास तौर से चीन को रोकने और उस पर कहीं न कहीं बढ़त बनाने में मदद मिलेगी। इससे महत्वपूर्ण रक्षा तकनीक़ों में सफलता हासिल होगी, जिससे भारत को तकनीक़ी क्षेत्र में चीन से आगे रहने में मदद मिलेगी। मान लीजिए अगर ऐसा नहीं भी होता है, तो भारत में बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा प्रणालियों के विकास में निवेश करने और रिसर्च को बढ़ावा देने से कम से कम बीएमडी तकनीक़ के मामले में भारत को चीन के समक्ष खड़ा करने में मदद तो ज़रूर मिलेगी। इन्हीं सब वजहों के मद्देनज़र यह बेहद ज़रूरी है कि भारत अपनी बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा क्षमताओं को बढ़ाने और बगैर समय गंवाए उन्हें सशक्त करने में गंभीरता दिखाए और पूरी ताक़त के साथ इस दिशा में क़दम बढ़ाए। •

लेखक ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के स्ट्रैटेजिक स्टडीज़ प्रोग्राम में सीनियर फेलो हैं।

मध्य पूर्व की हकीकत

बदलते नक्शे, उलझती तकदीरें

कबीर तनेजा

मध्य पूर्व एक बार फिर वैश्विक राजनीति के मोड़ पर खड़ा है—जहाँ शांति की पहलें, सैन्य समीकरण और आर्थिक दांवपेंच टकरा रहे हैं। अमेरिका, चीन, रूस और खाड़ी देश—सभी इस भूभाग की दिशा मोड़ने में लगे हैं।

पिछले कुछ हफ़्तों में सीरिया में भड़की हिंसा और अस्थिरता अप्रत्याशित नहीं थी। आज का भू-राजनीतिक माहौल एक प्रकार के ध्यान केंद्रित करने की कमी (attention deficit disorder) से ग्रस्त है, जहां सतही स्तर पर समझौते, युद्धविराम और सुर्खियों में रहने वाले संघर्ष समाधानों को लंबे समय से चली आ रही और गहरी राजनीतिक दरारों को संबोधित करने की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है। अक्टूबर 2023 में हमास द्वारा इज़राइल

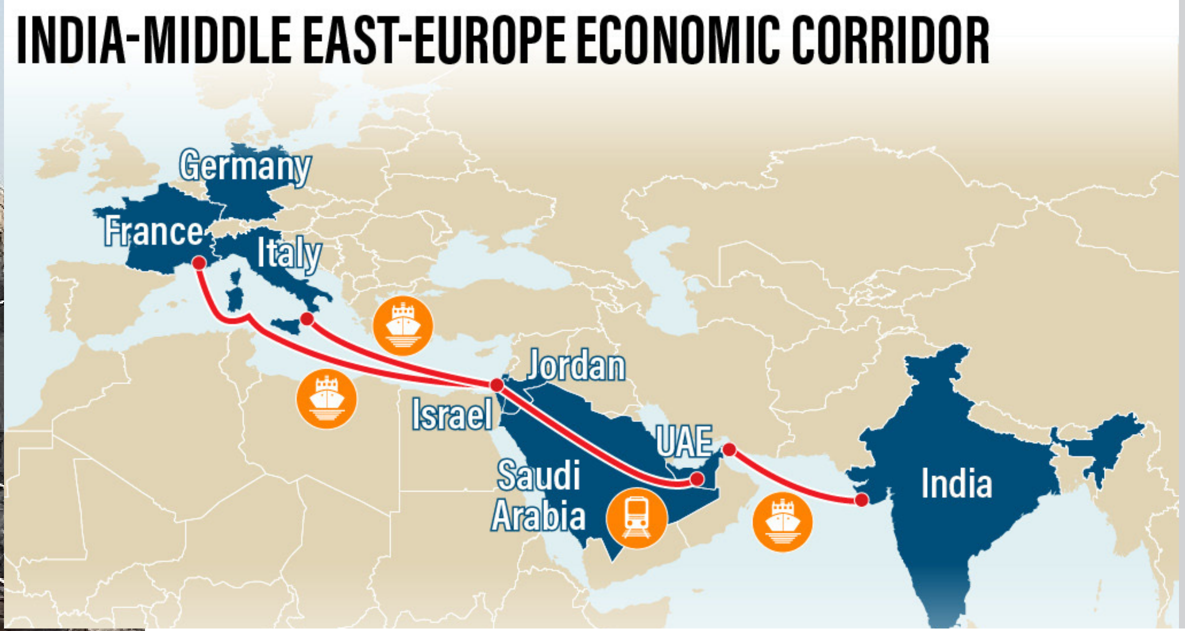

पर किए गए आतंकवादी हमले और गाजा में चल रहे युद्ध ने क्षेत्र की आगे की ओर देखने वाली योजनाओं को पटरी से उतार दिया है। 'नए मध्य पूर्व' पर बहस नाटकीय रूप से बदल गई है, शुरुआती आशावाद से लेकर वर्तमान अनिश्चितता तक।

2023 से, गाजा युद्ध, घरेलू रूप से चिंतित और संदेही इज़राइल, जीवित हमास, लाल सागर जैसे महत्वपूर्ण जलमार्गों में व्यवधान, ईरान के परमाणु कार्यक्रम के खिलाफ इज़राइल और अमेरिका के नेतृत्व वाले हमले, और कतर में अमेरिकी सैन्य सुविधाओं को निशाना बनाते हुए ईरानी मिसाइल जवाबी हमले ने विकास, आर्थिक विकास, समृद्धि और व्यापार के एक नए युग के लिए प्रयास कर रहे भूगोल में मुसीबतों का पिटारा खोल दिया है। प्रस्तावित भारत-मध्य पूर्व-यूरोप आर्थिक गलियारे (IMEC) से लेकर दुबई, अबू धाबी, दोहा और अब रियाद के वैश्विक वित्तीय और राजनयिक राजमार्गों में केंद्रीयता के लिए उत्सुक होने तक, 'नए मध्य पूर्व' कैसा दिखेगा, इस पर आज की भविष्यवाणियां शायद पटरी से उतर गई हैं। कई अरब राज्य अब खुद को तटस्थता के सिंहासन पर रखने की तलाश में हैं। साथ ही, वे यह भी महसूस कर रहे हैं कि ऐसा करना आगे और भी मुश्किल होता जाएगा। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण सऊदी अरब है, जिसने गाजा में इज़राइल की कार्रवाइयों पर एक मजबूत राजनीतिक रुख अपनाने में धीमी गति दिखाई, लेकिन अब उसने अपनी नीति स्पष्ट कर दी है, जिसमें इज़राइल के साथ किसी भी सुलह को एक फिलिस्तीनी राज्य की मान्यता से जोड़ा गया है।

पिछले कुछ महीने किसी भी नई चीज़ से ज़्यादा पुराने मध्य पूर्व की याद दिलाते हैं। दुबई के जगमगाते टावरों के आवरण के नीचे, सऊदी अरब में नियोम को चलाने वाले भव्य विचार और इस क्षेत्र को एआई, उच्च तकनीक वाले उत्पादों, सेमीकंडक्टरों और नवाचार के भविष्य के लिए एक वैश्विक केंद्र बनाने की महत्वाकांक्षाएं हैं - मूलभूत भू-राजनीतिक प्रश्न हैं जिन्हें पहले किसी और दिन निपटाने के लिए कालीन के नीचे दबा दिया गया था, लेकिन अब वे अपने बदसूरत सिर उठा रहे हैं। आज पश्चिम में एक विचार तेजी से लोकप्रिय है कि क्षेत्रीय शक्तियां संकट बिंदुओं के सामूहिक समाधान खोजने के लिए नीति निर्माण की जिम्मेदारी लेंगी। मध्य पूर्व में विदेशी उपस्थिति, ज़्यादातर अमेरिकी और यूरोपीय, को कम करने और उभरते खतरे की धारणाओं को संबोधित करने के लिए फिर से उन्मुख होने की उम्मीद है, खासकर चीन का एक महाशक्ति के रूप में उदय और रूस का महाद्वीपीय यूरोप के लिए मुख्य रणनीतिक चुनौती के रूप में खुद को फिर से स्थापित करना।

कुछ मायनों में, सीरिया एक लिटमस टेस्ट बनने जा रहा है। बशर अल-असद के लगभग तीन दशक के शासन के पतन और दमिश्क में बाथिस्ट शासन की आधी सदी की पकड़ के अंत के बाद, स्व-घोषित पतनशील जिहादी और हयात तहरीर अल-शाम (HTS) के प्रमुख - जिसे वाशिंगटन में जुलाई 2025 में ही एक आतंकवादी समूह के रूप में हटाया गया था - अहमद अल-

शारा (पूर्व में अबू मोहम्मद अल-जोलानी के रूप में जाने जाते थे), अब एक तंग रस्सी पर चलने और अमेरिका और यूरोप द्वारा समर्थित अरब राज्यों के साथ ईरान, रूस और चीन की तुलना में अधिक संरेखित होने के कार्य का सामना कर रहे हैं, जो अब असद परिवार के हाशिए पर धकेल दिए गए संरक्षक हैं। हालांकि, पश्चिम द्वारा अल-शारा की सत्ता पर तेज गति से कब्ज़े के उत्साहपूर्ण सामान्यीकरण ने असद के लौह मुट्ठी के नीचे दबे मुश्किल जातीय और राजनीतिक चुनौतियों को कम करके आंका और अनदेखा किया, जो सुन्नी-बहुसंख्यक राज्य में अल्पसंख्यक नस्लीय-धार्मिक अलावी संप्रदाय से थे।

मार्च 2025 में लाटाकिया शासन के आसपास और उसके आसपास के देश के तटीय क्षेत्रों में अलावी लोगों का नरसंहार - अल शारा के उदय का समर्थन करने के लिए अलावी बुजुर्गों के सैद्धांतिक रूप से सहमत होने के बावजूद - अंतर-सीरियाई एकीकरण के लिए आगे के मुश्किल कार्य को दर्शाता है। कुछ महीनों बाद तनाव फैल गया, इस बार दक्षिणी सीरिया के सुवेदा में, जहां बद्दू जनजाति (जो ज़्यादातर सुन्नी हैं) और द्रूज समुदाय से संबंधित समूहों के बीच झड़पों - जैसे कि शेख वाहिद अल-बूस

और शेख हिकमत अल-हिजरी के नेतृत्व में - में 1,000 से ज़्यादा लोगों की मौत हो गई। हिंसा एक राजमार्ग पर एक द्रूज व्यापारी के अपहरण से भड़की थी। इसके जवाब में, इज़राइल ने दमिश्क में अल-शारा के सैन्य मुख्यालय पर बमबारी की। जटिलता की एक और परत जोड़ते हुए, द्रूज को इज़राइल में एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक माना जाता है, और प्रधान मंत्री बेंजामिन नेतन्याहू की सरकार ने सीरिया में उनके हितों की रक्षा करने की कसम खाई है। अल-शारा पर हमले नए सीरियाई नेतृत्व और इज़राइल के बीच हाल ही में संपर्क स्थापित होने के बावजूद हुए।

सीरिया इस नाव में अकेला नहीं है। लेबनान एक और राज्य है जो एक नाजुक बदलाव से गुजर रहा है क्योंकि राष्ट्रपति जोसेफ औन कमजोर हिजबुल्लाह के मद्देनजर देश को वापस एक साथ जोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। भू-राजनीतिक कूटनीति केवल लाक्षणिक घोड़े को पानी तक ले जा सकती है - लेकिन उसके पीने के लिए, उसे इच्छुक, प्यासा होना चाहिए और खुद को एक सुरक्षित स्थान पर खोजना चाहिए। वैचारिक और राजनीतिक दरारें, जिनमें अंतर-जातीय ढांचों के निर्माण की चुनौती भी शामिल है, मध्य पूर्व में चल रहे भू-राजनीतिक प्रतियोगिता के तहत एक मुश्किल कार्य प्रस्तुत करती हैं। हालांकि, दिन के अंत में, वे सीरिया की आर्थिक तबाही को हल करने के जितने ही महत्वपूर्ण हैं। एक को दूसरे को संबोधित किए बिना हल नहीं किया जा सकता है। विचारधारा और जातीयता से संबंधित संघर्षों को कालीन के नीचे दबाना और यह मानना कि केवल पैसा ही एक जटिल राज्य संरचना की दुविधाओं को हल कर सकता है, वैचारिक रूप से त्रुटिपूर्ण है। सऊदी अरब ने सीरिया के लिए US 614 बिलियन डॉलर के निवेश की घोषणा की गई है, जबकि संयुक्त अरब अमीरात पहले ही भूमध्यसागरीय तट पर महत्वपूर्ण बंदरगाह टार्टस को लेने के लिए 800 मिलियन का सौदा कर चुका है। इसके अलावा, अमेरिका ने सुरक्षा एजेंसियों द्वारा उठाई गई चिंताओं के बावजूद अल-शारा और उसके तत्काल दायरे को आतंकवादी पदनामों से भी हटा दिया है।

अंत में, एक 'नए मध्य पूर्व' का विचार न तो सैद्धांतिक है और न ही हासिल करने के लिए बहुत महत्वाकांक्षी है। वास्तव में, अब्राहम समझौते, I2U2 और IMEC मूर्त वास्तविकताएं हैं जो क्षेत्र को बदलाव की ओर ले जा रही हैं। आखिरकार, सुरक्षा आर्थिक समृद्धि को सक्षम बनाती है, और आज मध्य पूर्व की मूल चिंता अपने सुरक्षा परिदृश्य की भविष्य की राह है। जबकि 2023 के बाद, इज़राइल एक बड़ा और अक्सर अतिरंजित भूमिका निभा रहा है, अन्य क्षेत्रीय अभिनेताओं और हितधारकों को भविष्य के लिए एक समान भू-आर्थिक स्तर सुनिश्चित करने के लिए इस दलदल में उतरना होगा। एक 'नए मध्य पूर्व' को आकार देने की इक्विटी को क्षेत्र के भीतर से आना चाहिए, और अब क्षेत्रीय अभिनेताओं के लिए इस जिम्मेदारी को खुले तौर पर स्वीकार करने का समय है। •

कबीर तनेजा ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में सामरिक अध्ययन कार्यक्रम में उप निदेशक और फेलो हैं। यह आलेख ओआरएफ में प्रकाशित है।

शंघाई से उभरती नई वैश्विक धुरी

ईरान, एससीओ और एंटी-नाटो की बढ़ती रणनीति

संदीप कुमार

बीजिंग में हालिया शंघाई सहयोग संगठन (SCO) की बैठक ने पश्चिमी केंद्रों से दूर एक नए वैश्विक शक्ति केंद्र के उदय का संकेत दिया है। ईरान की सक्रिय भागीदारी और 'एंटी-नाटो' की रणनीति ने इस प्रक्रिया को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। इस बदलते परिदृश्य में, रूस और चीन की धुरी मजबूत हो रही है, जबकि भारत बहुध्रुवीयता की अपनी भूमिका को निभा रहा है। क्या SCO पश्चिमी आधिपत्य को चुनौती दे पाएगा?

हाल ही में बीजिंग में संपन्न हुए शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) की बैठक ने एक नए भू-राजनीतिक परिदृश्य का संकेत दिया है। लंबे समय से, वैश्विक सुरक्षा व्यवस्था का निर्धारण पश्चिमी केंद्रों जैसे वाशिंगटन या ब्रसेल्स में होता आया था, लेकिन अब एक नया कूटनीतिक ढांचा आकार ले रहा है, जिसकी पहल ईरान, रूस और चीन जैसे राष्ट्र बीजिंग में कर रहे हैं। ईरान की भागीदारी और उसके नए सुरक्षा दृष्टिकोण के साथ, एक 'एंटी-नाटो' या 'विकल्पीय वैश्विक सुरक्षा ढांचा' उभर रहा है, जो बहुध्रुवीयता, संप्रभुता और सामूहिक प्रतिरोध के सिद्धांतों पर आधारित है। यह सिर्फ एक सामरिक बदलाव नहीं है, बल्कि यह वैश्विक शक्ति संरचना के पुनर्गठन और एक नए अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के उदय का संकेत है।

यह परिवर्तन ऐतिहासिक संदर्भ में महत्वपूर्ण है। शीत युद्ध के बाद,

अमेरिका के नेतृत्व वाला पश्चिमी गठबंधन दुनिया भर में राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य शक्ति का केंद्र बन गया। हालांकि, हाल के वर्षों में, रूस और चीन जैसी शक्तियों का उदय हुआ है, जिन्होंने पश्चिमी आधिपत्य को चुनौती दी है और बहुध्रुवीय दुनिया के लिए आवाज उठाई है। एससीओ एक ऐसा मंच प्रदान करता है जहां ये शक्तियां अपने हितों को आगे बढ़ा सकती हैं और एक वैकल्पिक वैश्विक सुरक्षा ढांचा विकसित कर सकती हैं। ईरान का एससीओ में शामिल होना इस प्रवृत्ति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो एक बहुध्रुवीय दुनिया की ओर बढ़ते बदलाव को दर्शाता है।

ईरान की रणनीतिक पुनर्संरचना: एक 'विकल्पीय धुरी' की खोज

तेहरान अब शंघाई सहयोग संगठन को सिर्फ एक प्रतीकात्मक मंच नहीं मानता है, बल्कि नाटो के प्रभाव को संतुलित करने वाला एक ठोस, कार्यात्मक और दूरगामी संगठन मानता है। ईरान के विदेश मंत्री अब्बास अराकची ने बीजिंग में अपने भाषण में अमेरिका-इज़राइल की नीतियों की जिस स्पष्टता और विधिक आधारों से आलोचना की, वह केवल असंतोष की अभिव्यक्ति नहीं थी, बल्कि एक वैकल्पिक विश्व व्यवस्था का उद्घोष था। अराकची का तर्क था कि अंतरराष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन करके ईरान के परमाणु स्थलों पर हमले और पश्चिमी प्रतिबंध अवैध हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि 'कथानक का नियंत्रण अब पश्चिमी शक्तियों के हाथ में नहीं है।' यह बयान मौजूदा वैश्विक शक्ति संरचना के प्रति ईरान की गहरी अस्वीकृति को दर्शाता है और एक नए, अधिक न्यायसंगत अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना के लिए उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

ईरान का दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक नहीं है। वह एक व्यावहारिक रणनीति का पालन कर रहा है जो क्षेत्र में अपने प्रभाव को मजबूत करने और पश्चिमी दबाव का मुकाबला करने के लिए डिज़ाइन की गई है। एससीओ को एक प्रभावी मंच के रूप में उपयोग करके, ईरान अपने क्षेत्रीय सहयोगियों के साथ अपने संबंधों को गहरा कर सकता है और एक संयुक्त मोर्चा बना सकता है। यह ईरान को अपनी सुरक्षा और आर्थिक हितों की रक्षा करने और एक स्वतंत्र विदेश नीति का पालन करने में मदद करेगा।

एससीओ को एक क्रियाशील सुरक्षा मंच बनाने का ईरानी रोडमैप

अब्बास अराकची की प्रस्तावनाएं केवल सैद्धांतिक नहीं थीं, बल्कि उन्होंने शंघाई सहयोग संगठन के लिए एक व्यवस्थित संस्थागत खाका प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य इसे एक क्रियाशील सुरक्षा मंच बनाना है। उनके प्रस्तावित उपायों में शामिल हैं:

सामूहिक सुरक्षा निकायः यह निकाय बाहरी हमलों, आतंकवाद और तोड़फोड़ जैसी गतिविधियों का जवाब देने के लिए बनाया जाएगा, जिससे सदस्य देशों को सुरक्षा की एक सामूहिक गारंटी मिल सके।

स्थायी समन्वय तंत्रः यह तंत्र सदस्य देशों के विरुद्ध हो रही गुप्त गतिविधियों को दर्ज करेगा और जवाबी रणनीति बनाएगा, जिससे सुरक्षा

खतरों का मुकाबला करने के लिए त्वरित और समन्वित प्रतिक्रिया सुनिश्चित की जा सके।

प्रतिबंध प्रतिरोध केंद्र: यह केंद्र पश्चिमी प्रतिबंधों के प्रभाव को सामूहिक रूप से झेलने के लिए बनाया जाएगा, जिससे सदस्य देशों को आर्थिक दबाव का सामना करने में मदद मिलेगी।

शंघाई सुरक्षा मंच: यह मंच रक्षा और खुफिया समन्वय पर चर्चा करने के लिए बनाया जाएगा, जिससे सदस्य देशों के बीच सुरक्षा सहयोग बढ़ेगा।

सांस्कृतिक और मीडिया सहयोग: यह सहयोग सूचना युद्ध और वैचारिक हमलों का मुकाबला करने के लिए किया जाएगा, जिससे सदस्य देशों को अपने मूल्यों और हितों की रक्षा करने में मदद मिलेगी।

इन प्रस्तावों से स्पष्ट है कि ईरान केवल पश्चिम का विरोध नहीं कर रहा है, बल्कि भविष्य का खाका भी तैयार कर रहा है। वह एससीओ को एक ऐसे संगठन के रूप में देखता है जो पश्चिमी प्रभुत्व को संतुलित कर सकता है और एक अधिक बहुध्रुवीय दुनिया को बढ़ावा दे सकता है।

रूस-चीन-ईरान की त्रिधारा: बहुध्रुवीयता की नई आधारशिला

इस बैठक में रूस के विदेश मंत्री सर्गेई लावरोव की उपस्थिति और उनका चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग से मिलना इस ओर संकेत करता है कि मास्को-बीजिंग धुरी अब केवल आर्थिक नहीं, बल्कि रणनीतिक गठजोड़ का रूप ले चुकी है। ईरान की भूमिका इस गठजोड़ को एक नया भूराजनीतिक संतुलन देने में है। रूस इस समय सेंट्रल एशिया और दक्षिण एशिया को जोड़ने वाले ब्रिज की तरह कार्य कर रहा है। भारत, चीन, पाकिस्तान, ईरान - इन सबके साथ उसका संवाद यह दर्शाता है कि एससीओ एक लचीली लेकिन प्रभावशाली व्यवस्था बनने की दिशा में बढ़ रही है, जो विविध हितों को एक मंच पर समाहित कर सकती है - बिना किसी केंद्रीय प्रभुत्व के। रूस का बढ़ता प्रभाव मध्य एशिया और दक्षिण एशिया में अपनी रणनीतिक स्थिति को मजबूत करने की इच्छा को दर्शाता है, जबकि चीन के साथ उसका गठबंधन उसे पश्चिमी देशों के साथ प्रतिस्पर्धा करने और एक बहुध्रुवीय दुनिया को बढ़ावा देने की अनुमति देता है।

रूस और चीन के बीच बढ़ते सहयोग से संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके सहयोगियों के लिए चुनौतियां बढ़ रही हैं। यह गठबंधन दुनिया भर में शक्ति संतुलन को बदल सकता है और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभाव को कम कर सकता है।

भारत की भूमिका: पश्चिम की अपेक्षाओं के विपरीत

पश्चिमी विश्लेषकों की यह भविष्यवाणी कि भारत की मौजूदगी से एससीओ में दरार पैदा होगी, पूरी तरह गलत साबित हुई। भारत ने न केवल सक्रिय भागीदारी की, बल्कि मंच के प्रति अपनी प्रतिबद्धता भी दोहराई। भारत का यह रुख बताता है कि वह बहुध्रुवीयता में अपनी भूमिका को लेकर सजग है और पश्चिम की कठोर धुरी में पूरी तरह समाहित नहीं होना चाहता। यह भारत की स्वतंत्र विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो उसे अपने राष्ट्रीय हितों के अनुसार कार्य करने की अनुमति देता है।

भारत के लिए, एससीओ एक ऐसा मंच प्रदान करता है जहां वह मध्य

एशिया और रूस के साथ अपने संबंधों को मजबूत कर सकता है। यह भारत को ऊर्जा संसाधनों तक पहुंच प्राप्त करने, आतंकवाद का मुकाबला करने और क्षेत्रीय सुरक्षा को बढ़ावा देने में भी मदद करता है। भारत का एससीओ में सक्रिय रहना इस क्षेत्र में एक जिम्मेदार और रचनात्मक शक्ति के रूप में अपनी भूमिका को मजबूत करने की उसकी इच्छा को दर्शाता है।

हालांकि, भारत के लिए एससीओ में अपनी भूमिका को संतुलित करना एक चुनौती है, क्योंकि उसके संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों के साथ भी मजबूत संबंध हैं। भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि एससीओ में उसकी भागीदारी पश्चिमी देशों के साथ उसके संबंधों को नुकसान न पहुंचाए।

संयुक्त राष्ट्र के कानूनों के हवाले से पश्चिम को चुनौती

अराकची ने संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2, खंड 4 और सुरक्षा परिषद की प्रस्ताव संख्या 487 का हवाला देते हुए बताया कि ईरान के परमाणु ठिकानों पर हमले और प्रतिबंध पूरी तरह गैरकानूनी हैं। यह रुख 'विधिक प्रतिरोध' का प्रतीक है - जो अंतरराष्ट्रीय मंचों पर पश्चिम की नैतिक वैधता को चुनौती देता है। यह कानूनी तर्क न केवल ईरान के दृष्टिकोण को मजबूत करता है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय कानून के आधार पर पश्चिम की कार्रवाइयों की वैधता पर भी सवाल उठाता है।

यह दृष्टिकोण अंतरराष्ट्रीय कानून के महत्व पर जोर देता है और पश्चिमी शक्तियों को अंतरराष्ट्रीय नियमों का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करता है। ईरान का कानूनी प्रतिरोध अन्य विकासशील देशों के लिए एक मिसाल कायम कर सकता है जो अपने हितों की रक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय कानून का उपयोग करना चाहते हैं।

पश्चिम की प्रतिक्रिया: अनुमान के अनुरूप दबाव

ईरान के प्रस्तावों के कुछ ही दिनों में, यूरोपीय संघ ने आठ ईरानी व्यक्तियों और एक संस्था पर नए प्रतिबंध लगाए। कारण - 'गंभीर मानवाधिकार उल्लंघन।' लेकिन यह एक रणनीतिक संकेत था। पश्चिम चाहता है कि एससीओ जैसे मंच प्रभावी न बनें और ईरान जैसी राष्ट्रों की आवाज़ वैश्विक विमर्श से बाहर रहे। लेकिन यही प्रतिक्रिया ईरान की बात को सही ठहराती है: 'वर्तमान वैश्विक व्यवस्था 'नियम आधारित' नहीं, बल्कि 'शक्ति आधारित' हो चुकी है।'

पश्चिमी दबाव ईरान को अपनी विदेश नीति में और अधिक दृढ़ रहने के लिए प्रेरित कर सकता है और पश्चिमी देशों के साथ उसके संबंधों को और खराब कर सकता है। हालांकि, यह ईरान को एससीओ और अन्य गैर-पश्चिमी शक्तियों के साथ अपने संबंधों को मजबूत करने के लिए भी प्रेरित कर सकता है।

नाटो बनाम एससीओ: संरचनात्मक अंतर

नाटो एक केंद्रीकृत, अमेरिका-प्रधान सुरक्षा गठबंधन है, जिसमें सदस्य

देशों को केंद्रीय आदेशानुसार चलना होता है। इसके विपरीत, एससीओ का ढांचा अधिक समतावादी और संप्रभुता-सम्मत है। इसमें किसी एक शक्ति का वर्चस्व नहीं है। नाटो का आधार सामूहिक प्रतिरोध के नाम पर एकसूत्रीय संचालन है, जबकि एससीओ का आधार विविधताओं में सह-अस्तित्व और संवाद है।

यह संरचनात्मक अंतर एससीओ को उन देशों के लिए एक आकर्षक विकल्प बनाता है जो पश्चिमी आधिपत्य से असहज हैं। एससीओ सदस्य देशों को अपनी संप्रभुता बनाए रखने और अपनी विदेश नीति का स्वतंत्र रूप से पालन करने की अनुमति देता है। यह एससीओ को नाटो की तुलना में अधिक लचीला और अनुकूलनीय बनाता है।

भविष्य की परिकल्पना: क्या यह सचमुच 'एंटी-नाटो' बन सकता है?

ईरान की दीर्घकालिक रणनीति इस विचार पर टिकी है कि 21वीं सदी में एकमात्र सुरक्षा तंत्र नाटो नहीं रहेगा। अगर एससीओ ईरान के प्रस्तावों को स्वीकार कर संस्था के ढांचे में बदलाव करता है, तो यह सचमुच पश्चिमी प्रभुत्व को संतुलित करने वाला विकल्प बन सकता है। यह सिर्फ ईरान की बात नहीं है - इसमें रूस, चीन, भारत, पाकिस्तान, सेंट्रल एशियन राष्ट्रों जैसे अनेक देश हैं जो पश्चिमी वर्चस्व से असहज हैं और विकल्प की तलाश में हैं।

एससीओ के 'एंटी-नाटो' बनने की संभावना पश्चिमी शक्तियों के लिए एक गंभीर चुनौती पेश करती है। इससे वैश्विक शक्ति संतुलन में बदलाव हो सकता है और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष: बीजिंग में नया विश्वदृष्टिकोण आकार ले रहा है

ईरान का शंघाई सहयोग संगठन के मंच से उठाया गया यह कदम केवल एक रणनीतिक पुनर्संरचना नहीं है, बल्कि भविष्य की अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था का ब्लूप्रिंट है। यह एक ऐसा प्रयास है जो बताता है कि वैश्विक राजनीति अब केवल वाशिंगटन या ब्रसेल्स में नहीं तय होगी - बल्कि तेहरान, बीजिंग और मास्को जैसे शहरों में भी उसकी स्क्रिप्ट लिखी जाएगी। ईरान अब केवल एक 'परेशानी पैदा करने वाला राष्ट्र' नहीं, बल्कि एक संस्थागत योजनाकार के रूप में उभर रहा है। और यदि उसके प्रस्तावों को समर्थन मिलता है, तो 21वीं सदी में हम सचमुच एक नया वैश्विक सुरक्षा ढांचा बनते देख सकते हैं - जहां बहुध्रुवीयता, संप्रभुता और सहयोग, वर्चस्व और अधिपत्य पर भारी पड़ेंगे।

पश्चिमी दबाव ईरान को अपनी विदेश नीति में और अधिक दृढ़ रहने के लिए प्रेरित कर सकता है और पश्चिमी देशों के साथ उसके संबंधों को और खराब कर सकता है। हालांकि, यह ईरान को एससीओ और अन्य गैर-पश्चिमी शक्तियों के साथ अपने संबंधों को मजबूत करने के लिए भी प्रेरित कर सकता है।

बीजिंग में एससीओ की बैठक एक ऐसे नए युग की शुरुआत का संकेत देती है जहां वैश्विक शक्ति संरचना अधिक विकेंद्रीकृत और बहुध्रुवीय होगी। यह एक ऐसा युग है जहां विकासशील देश अंतरराष्ट्रीय मामलों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाएंगे और वैश्विक नियमों और मानदंडों को आकार देने में मदद करेंगे। यह एक ऐसा युग है जहां सहयोग और संवाद संघर्ष और टकराव की जगह लेंगे।

हालांकि यह परिवर्तन आसान नहीं होगा। पश्चिमी शक्तियों से प्रतिरोध की उम्मीद की जा सकती है, और एससीओ के भीतर सदस्य देशों के बीच हित संघर्ष हो सकते हैं। लेकिन फिर भी, बहुध्रुवीय दुनिया का उदय एक अपरिहार्य प्रवृत्ति है। जैसे-जैसे वैश्विक शक्ति संतुलन बदलता है, विकासशील देशों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे अपनी आवाज उठाएं और भविष्य की अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को आकार देने में मदद करें।

इस संदर्भ में, भारत को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। भारत एक बड़ा और प्रभावशाली देश है जिसकी पश्चिमी और गैर-पश्चिमी दोनों शक्तियों के साथ मजबूत संबंध हैं। भारत एक ऐसा सेतु बन सकता है जो विभिन्न दृष्टिकोणों को एक साथ लाता है और वैश्विक सहमति को बढ़ावा देता है।

भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि बहुध्रुवीय दुनिया एक अधिक न्यायसंगत और समावेशी दुनिया हो। भारत को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि बहुध्रुवीय दुनिया शांतिपूर्ण और स्थिर हो। भारत अपने कूटनीतिक कौशल और अपनी आर्थिक ताकत का उपयोग करके इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद कर सकता है। अंतिम रूप से, बीजिंग में एससीओ की बैठक वैश्विक राजनीति में एक महत्वपूर्ण क्षण थी। यह एक बहुध्रुवीय दुनिया के उदय का संकेत था, और इसने विकासशील देशों को भविष्य की अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को आकार देने में मदद करने का अवसर प्रदान किया। यह अवसर भारत के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह इस क्षेत्र में और दुनिया भर में नेतृत्व की भूमिका निभा सकता है। भारत को इस अवसर को जब्त करना चाहिए और एक अधिक न्यायसंगत, समावेशी, शांतिपूर्ण और स्थिर दुनिया के निर्माण में मदद करनी चाहिए। ●

पाकिस्तान-भारत-चीन जल युद्ध की ओर?

संतु दास

19 जुलाई को, चीन के प्रधान मंत्री ली कियांग ने पारिस्थितिक रूप से नाजुक और संवेदनशील तिब्बत क्षेत्र में ब्रह्मपुत्र नदी पर बांध के निर्माण को सही ठहराते हुए भारत और बांग्लादेश जैसे मध्य और निचले तटवर्ती देशों में इसके संभावित प्रभाव को लेकर आशंकाओं को दूर करने का प्रयास किया। चीन का कहना है कि अनुमानित 167 बिलियन डॉलर की लागत वाली बांध परियोजना पारिस्थितिक संरक्षण सुनिश्चित करेगी और स्थानीय समृद्धि को बढ़ाएगी।

हालांकि, भारत में चिंताएं बढ़ रही हैं। अरुणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री पेमा खांडू ने नदी पर चीनी बांध परियोजना को 'टिकिंग वाटर बम' और गंभीर चिंता का विषय बताया है। भारत की चिंताएं जायज हैं, क्योंकि ब्रह्मपुत्र नदी अरुणाचल प्रदेश और असम जैसे राज्यों के लिए पानी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। बांध के निर्माण से पानी का प्रवाह कम हो सकता है, जिससे कृषि, आजीविका और पारिस्थितिकी तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

चीन ने बार-बार यह आश्वासन दिया है कि बांध परियोजना से निचले इलाकों में पानी की उपलब्धता प्रभावित नहीं होगी। हालांकि, भारत और बांग्लादेश जैसे देशों को इन आश्वासनों पर संदेह है, क्योंकि चीन अंतरराष्ट्रीय जल संधियों का हस्ताक्षरकर्ता नहीं है।

सिंधु जल विवाद: एक और संभावित संघर्ष का क्षेत्र

अरुणाचल प्रदेश से 3,000 किलोमीटर से अधिक दूर, कश्मीर घाटी में लोग चुपचाप यह अनुमान लगा रहे हैं कि भारत और पाकिस्तान के बीच अगला युद्ध कश्मीर के पानी को लेकर लड़ा जा सकता है। जल संसाधन पहले से ही तनावग्रस्त क्षेत्र में एक और विस्फोटक मुद्दा बन रहे हैं। 22 अप्रैल को पहलगाम, कश्मीर में आतंकवादी हमले के बाद, नई दिल्ली ने 1960 की सिंधु जल संधि (आईडब्ल्यूटी) को

स्थगित कर दिया। जवाब में, इस्लामाबाद ने 1972 के शिमला समझौते को निलंबित कर दिया और भारत की कार्रवाई को 'युद्ध का कार्य' बताया। विश्व बैंक द्वारा मध्यस्थता की गई आईडब्ल्यूटी, भारत और पाकिस्तान के बीच एक जल-वितरण समझौता है, जो पिछले 65 वर्षों से कायम है, लेकिन भारत द्वारा पहली बार इसे निलंबित किया गया है।

आईडब्ल्यूटी के अनुसार, दोनों देश सिंधु नदी और उसकी सहायक नदियों में उपलब्ध पानी का उपयोग कर सकते हैं। पाकिस्तान को सिंचाई, पीने और गैर-उपभोग उपयोग (जलविद्युत) के लिए सिंधु बेसिन की पश्चिमी नदियों - सिंधु, झेलम और चेनाब पर अधिकार दिए गए हैं। भारत को पूर्वी नदियों - रावी, ब्यास और सतलुज पर अप्रतिबंधित उपयोग का अधिकार है। संधि के अनुसार, भारत को पश्चिमी नदियों का उपयोग सीमित उद्देश्यों (बिजली उत्पादन और सिंचाई) के लिए करने की अनुमति है, बिना बड़ी मात्रा में भंडारण या मोड़ किए।

लेकिन अब नई दिल्ली कथित तौर पर जम्मू और कश्मीर के पानी से अतिरिक्त प्रवाह को उत्तरी भारतीय राज्यों पंजाब और हरियाणा और यहां तक कि राजस्थान में मोड़ने के लिए एक मेगा अंतर-बेसिन जल हस्तांतरण योजना पर काम कर रही है। मीडिया रिपोर्टों से संकेत मिलता है कि नई दिल्ली का उद्देश्य सिंधु नदी के पानी के लाभों को अधिकतम करना है। कश्मीर से अन्य राज्यों में अतिरिक्त प्रवाह को पुनर्निर्देशित करने वाली 113 किलोमीटर लंबी नहर के निर्माण की संभावना का पता लगाने के लिए एक व्यवहार्यता अध्ययन किया जा रहा है।

यह प्रस्ताव इस्लामाबाद या कश्मीर स्थित राजनीतिक समूहों को पसंद नहीं आया है। कश्मीर और पंजाब के प्रमुख यूनियनवादी राजनीतिक संगठनों के बीच वाकयुद्ध शुरू करने के अलावा, इस परियोजना से नए अंतरराज्यीय जल विवाद भड़कने की संभावना है।

युद्ध की चेतावनी

पूर्व भारतीय सेना अधिकारी, प्रमुख सामरिक और रक्षा विशेषज्ञ और लेखक प्रवीण साहनी ने आरटी को बताया कि आईडब्ल्यूटी का कोई भी उल्लंघन पाकिस्तान के दृष्टिकोण से युद्ध का कार्य होगा। उन्होंने कहा, 'पाकिस्तान को पानी का प्रवाह रोकना या आईडब्ल्यूटी का उल्लंघन करके कश्मीर के पानी को अन्य राज्यों में मोड़ना युद्ध का कार्य माना जाएगा। एक ऐसा युद्ध जिसे भारत चीन और पाकिस्तान के अटूट दोस्त होने के कारण नहीं जीत सकता।'

भारतीय गृह मंत्री अमित शाह ने पिछले महीने मध्य प्रदेश राज्य की यात्रा के दौरान कहा, 'सिंधु का पानी तीन वर्षों के भीतर नहरों के माध्यम से राजस्थान के श्री गंगानगर तक ले जाया जाएगा।' उन्होंने यह भी दावा किया कि पाकिस्तान 'पानी की हर बूंद के लिए तरस जाएगा।' इसी तरह के बयान अन्य भारतीय राजनेताओं ने भी दिए हैं।

पाकिस्तान इस खतरे को कैसे देखता है? द वायर के साथ एक हालिया साक्षात्कार में, पाकिस्तान के पूर्व विदेश मंत्री बिलावल भुट्टो-जरदारी ने कश्मीर विवाद और 'जल आतंकवाद' सहित सभी बकाया मुद्दों पर दोनों देशों के बीच व्यापक बातचीत का समर्थन किया। उन्होंने कहा, 'भारत 240 मिलियन पाकिस्तानी लोगों की पानी की आपूर्ति काटकर सिंधु घाटी सभ्यता को भूखा रखने की धमकी दे रहा है, जो एक साझा संस्कृति, इतिहास और विरासत है। यह उन सभी चीजों के खिलाफ है जो कभी भारतीय हुआ करते थे। यह (मोहनदास करमचंद) गांधी के दर्शन के खिलाफ है। यह उन सभी चीजों के खिलाफ है जो हमें भारत के बारे में एक धर्मनिरपेक्ष देश के रूप में सिखाई गई हैं।'

पहले के साक्षात्कारों में, भुट्टो ने चेतावनी दी थी कि अगर पाकिस्तान को पानी का प्रवाह रोका गया, तो इसके गंभीर परिणाम होंगे। पाकिस्तान में नेशनल असेंबली के बजट सत्र के दौरान, उन्होंने वर्तमान भारतीय सरकार पर आईडब्ल्यूटी को एकतरफा निलंबित करके अंतरराष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करने का आरोप लगाया।

अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप

हेग स्थित स्थायी मध्यस्थता न्यायालय ने हाल ही में फैसला सुनाया कि नई दिल्ली के आईडब्ल्यूटी को निलंबित करने के फैसले ने भारत के खिलाफ पाकिस्तान की शिकायतों पर फैसला सुनाने के लिए अदालत की क्षमता को नहीं छीना है। नई दिल्ली ने विश्व बैंक द्वारा अक्टूबर 2022 में इसके निर्माण के बाद से ही मध्यस्थता न्यायालय की कार्यवाही का विरोध किया है। भारतीय विदेश मंत्रालय ने 27 जून को एक बयान में इस कदम को 'पाकिस्तान की ओर से नवीनतम तमाशा' बताया।

सभी हितधारकों के लिए यह आवश्यक है कि वे संयम बरतें और जल संसाधनों के न्यायसंगत और टिकाऊ उपयोग पर बातचीत करें। एक त्रिपक्षीय समझौते से चीन, भारत और पाकिस्तान को लाभ हो सकता है, जिसमें सियाचिन ग्लेशियर का विसैन्यीकरण शामिल हो - जो सिंधु को पोषित करने वाला महत्वपूर्ण 'नीला क्रिस्टल' है। यह स्पष्ट है कि जल संघर्ष क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा है। ●

सैयारा

Box Office Queen या सोशल मीडिया स्कैम?

यशराज फिल्म्स फिल्म्स की रोमांटिक ड्रामा सैयारा ने जुलाई 2025 में बॉक्स ऑफिस पर तूफानी दस्तक दी—कमाई के मामले में यह साल की सबसे बड़ी हिट साबित हुई। लेकिन इस सफलता की चमक के पीछे एक विवादों से घिरा अध्याय भी है, जिसने फिल्म को सुर्खियों में बनाए रखा।

सबसे पहले सोशल मीडिया पर एक वायरल दावा सामने आया, जिसमें कहा गया कि फिल्म निर्माताओं ने थिएटरों में दर्शकों को 500 प्रति व्यक्ति भुगतान कर भावुक होकर रोने के लिए कहा, ताकि फ़िल्म की प्रभावशीलता को दर्शाया जा सके। इस 'पेड क्राइंग' आरोप ने फिल्म की साख पर सवाल खड़े कर दिए। सोशल मीडिया पर हज़ारों मीम्स और ट्रोल्स की बाढ़ आ गई, जिसने फिल्म की मार्केटिंग रणनीति को 'भावनात्मक जाल' करार दिया।

हालांकि, फिल्म की अभिनेत्री तनिषा मुखर्जी ने इन आरोपों को 'बॉलीवुड बैशिंग' का नाम दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'सैयारा का इमोशनल असर वास्तविक है, न कि किसी पीआर स्टंट का नतीजा।' उन्होंने सोशल मीडिया पर एक लंबा पोस्ट लिखकर फ़िल्म की टीम का बचाव किया और कहा कि 'दर्शकों की भावनाओं का अपमान नहीं किया जाना चाहिए।'

इस बीच, एक और वीडियो वायरल हुआ जिसमें फिल्म के मुख्य अभिनेता अहान पांडे 2005 के एक पुराने गाने 'अगर तुम मिल जाओ' पर लिप-सिंक करते दिखते हैं। वीडियो को देखकर यह धारणा बनी कि अहान का अभिनय और बॉलीवुड से जुड़ाव वर्षों पुराना है, जिसने दर्शकों को उनका फैन बना दिया।

सैयारा की इस कहानी में नई प्रतिभा की सफलता, सोशल मीडिया का उभार, विवादों की लहर और दर्शकों की भावनात्मक प्रतिक्रियाएं—सब एक साथ गूंथ गए हैं। यह फिल्म न केवल एक रोमांटिक कहानी है, बल्कि आज के डिजिटल युग में सिनेमा की लोकप्रियता, आलोचना और वास्तविकता के टकराव की मिसाल भी बन गई है।

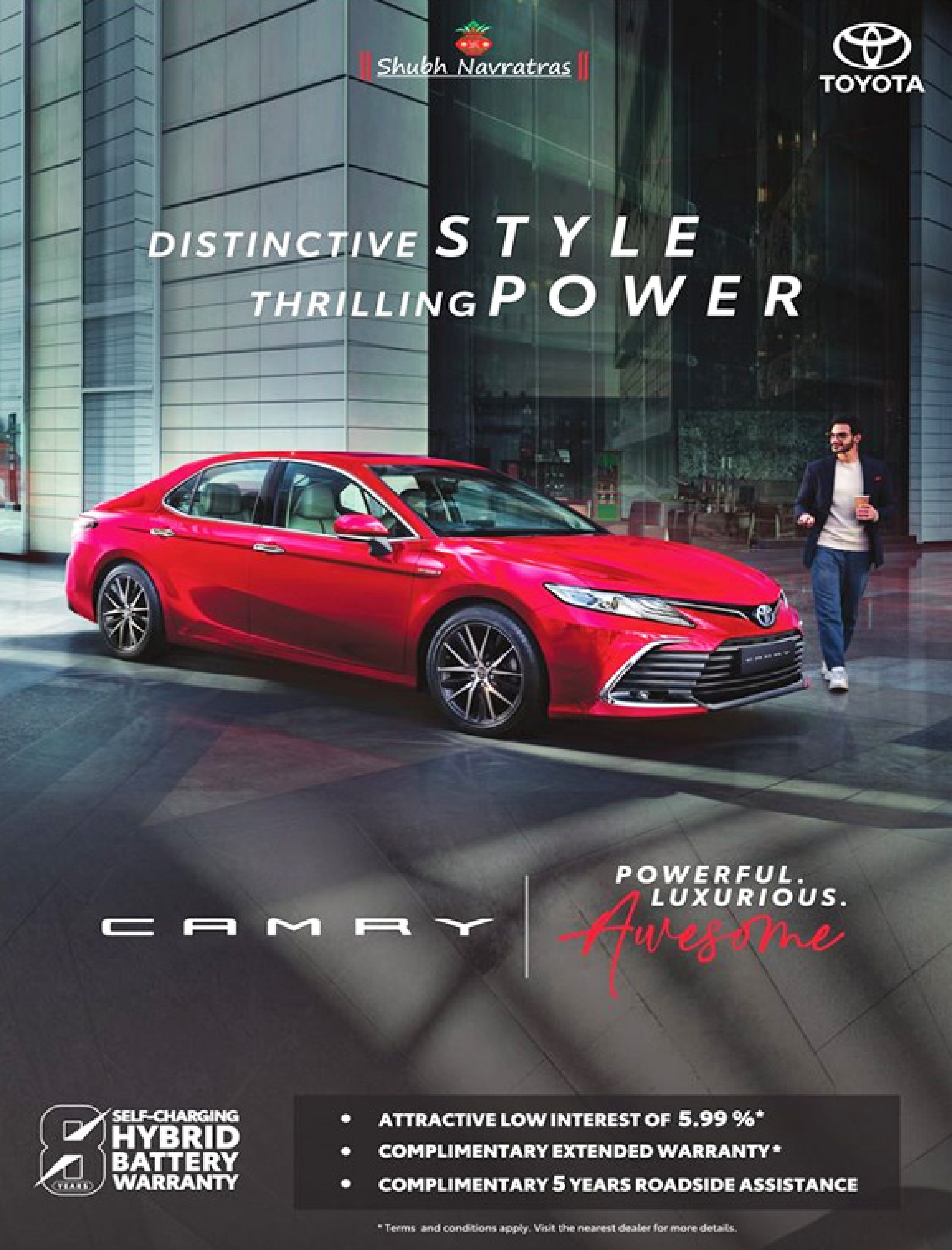

Shubh Navratras
TOYOTA
DISTINCTIVE STYLE
THRILLING POWER
CAMRY
POWERFUL.
LUXURIOUS.
Awesome
8 YEARS
SELF-CHARGING
HYBRID
BATTERY
WARRANTY
• ATTRACTIVE LOW INTEREST OF 5.99 %*
• COMPLIMENTARY EXTENDED WARRANTY*
• COMPLIMENTARY 5 YEARS ROADSIDE ASSISTANCE
* Terms and conditions apply. Visit the nearest dealer for more details.

RNI TITLE CODE : DELENG19447

MARC SANITATION PVT. LTD.
A-2, S.M.A. Co-op. Industrial Estate, G.T. Kamal Road, Delhi-110 033
Ph: 27691410, Fax: 011-27691445/27692295 E-mail: info@marcindia.com Website : www.marcindia.com